विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री कालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)
१२३. श्रीमती चन्द्रिका कालरा (बम्बई)
१२४. श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)
१२५. श्रीमती छवि सिंह, गाजीपुर (उ० प्र०)
१२६. विवेकानन्द युवा महामंडल, इन्दौर (म० प्र०)
१२७. श्री आनन्द यश चोपड़ा, अलोंग(अरुणाचल प्रदेश)
१२८. सुश्री सेजल क० मान्डवीय, जूनागढ़ (गुजरात)
१३०. श्री विजय कुमार रामसेवक गुप्ता, नागपुर
१३१. श्री बी. के. दीक्षित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन—लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स—मंडरदिशा (आ०)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल— लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरवारा – लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री मधुभाई पटेल—बड़ोदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२. महावीर बाल वाचनालय—वृन्दावन नगर(रा
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र -एन० सी० हिल्स
१४९. श्री बी० बी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल —नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका – कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. सुश्री एस. पी. त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक—मालवीय नगर, नयी दिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१४ जनवरी—१९९५ अंक—१

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक।

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन। ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५० रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

फूल के पूरी तरह खिल जाने पर उसकी सुगन्ध से मधुमक्खियाँ अपने आप खिंची चली आती हैं। कहीं मिठाई रखी हो तो वहाँ चीटियाँ आप ही चली आती हैं। इसके लिए उन्हें आमन्त्रण नहीं देना पड़ता। इसी प्रकार जब साधक पूर्ण, सिद्ध हो जाता है तो उसके पावन चरित्र की मधुर सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है और सत्य-प्राप्ति की स्पृहा रखनेवाले व्यक्ति अपने आप उसकी ओर आकर्षित होते हैं। उसे उपदेश सुनाने के लिए श्रोता की तलाश नहीं करनी पड़ती।

(२)

लोहा यदि एक बार पारस पत्थर को छूकर सोना बन जाए, तो फिर उसे चाहे मिट्टी के भीतर गाड़ रखो, चाहे कूड़े में फेंक दो, वह सोना ही बना रहेगा, फिर लोहा नहीं बनेगा। जिन्होंने भगवान् का लाभ कर लिया है उनकी अवस्था भी इसी प्रकार होती है। वे चाहे संसार में रहें चाहे वन में, उन्हें किसी प्रकार का दोष छू नहीं सकता।

(३)

मुक्त पुरुष संसार में किस तरह रहते हैं, जानते हो ?—पनडुब्बी चिड़िया की तरह; जो पानी में रहती तो है पर उसके बदन पर पानी नहीं लगता; अगर कभी थोड़ा-सा लग भी जाए तो एक बार बदन को झाड़ लेने से तुरन्त सब पानी झड़ जाता है।

(४)

धोबी की तरह दूसरों के दोष-दुर्गुण और कुविचारों के द्वारा अपना भण्डार मत भरो।

भजन

(केदार—त्रिताल)

जय यतीश्वर जय तमोहारी,
जय शिव शम्भु नर रूप धारी।
जय वेद-वाणी ज्ञान गंगाधर
पतित-पालक जय विषधर।
जय भय-वारण विजय-केतन,
जय वीरेश्वर जय दण्डधारी ।।

त्रिलोकवासी श्रीचरण वन्दे,
महिमा तब गाहे गीति-छन्दे।
(जय) भूभार-हरण विमोह-नाशन
नमो महेश्वर नर-लोक चारी।

———

भावानुवाद (केदार-त्रिताल)

जय यतीश्वर जय तमहारी,
जय शिव शम्भू नर रूप धारो।
जय वेद-वाणी ज्ञान गंगाधर,
पतित पालक जय विषधर।
जय भय वारण विजय केतन,
जय वीरेश्वर जय दण्डधारी ।।

त्रिलोकवासी करें चरण-वन्दना
गीतों में गावे तव महिमा।
भूभार-हरण विमोह-नाशन
नमो महेश्वर नर-लोक-चारी ।।

युवकों के आदर्श अनन्य : विवेकानन्द-विवेकानन्द

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

अपने पावन त्रिदेव भगवान श्रीरामकृष्ण देव, परम पावनी श्रीमाँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्दजी की अनन्त अहेतुकी कृपा से 'विवेक शिखा' इस अंक के साथ ही अपने जीवन के १४वें वर्ष में प्रवेश कर रही है, यह हम सब के लिए आन्तरिक आह्लाद का विषय है। 'विवेक शिखा' का हर अंक हमारे पावन त्रिदेव का एक चमत्कार है। न पूँजी, न स्थायी कोष, न कर्मचारी वर्ग (स्टाफ), न प्रकाशन के उपकरण, और तब भी विगत तेरह वर्षों से यह पत्रिका अनाहत-अव्याहत रूप से प्रकाशित होती चली आ रही है। है न चमत्कार इन त्रिदेवों का ! और इसी चमत्कार का एक पक्ष यह है कि इसके प्रकाशन में रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों के वरिष्ठ साधु-ब्रह्मचारियों एवं आप पाठकों का इसे अप्रतिम स्नेह, सहयोग और समर्थन मिलता रहा है। मैं अभिभूत हूँ। अपने त्रिदेवों के पाद-पद्मों में प्रणत हूँ। हमारे त्रिदेव का आशीर्वाद आप सब पर इस नये वर्ष में बरसता रहे।

कागज की कीमत और प्रकाशन के अन्य उपकरणों में हो रही निरन्तर अभूतपूर्व अतिशय वृद्धि के कारण हमें विवश होकर इस वर्ष से विवेक शिखा के वार्षिक शुल्क को बढ़ाकर चालीस रुपये करना पड़ रहा है। आशा है, हमारी विवशता को देखकर आप पाठकों और ग्राहकों का स्नेह-सहयोग हमें पूर्ववत् मिलता रहेगा।

जनवरी का महीना हम सब के लिए विशेष महत्त्व का महीना है - आध्यात्मिक प्रकाश और प्रेरणा ग्रहणकर अध्यात्म के अतल तल में प्रवेश करने का विशेष महीना। इसी महीने की पहली तारीख को अपना लीला-संवरण करने के कुछ ही दिनों पूर्व भगवान् श्रीरामकृष्ण ने कल्पतरु का रूप धारण कर आगत भक्तों की हर मनोकामना पूर्ण की थी। जब और आकांक्षी नहीं आ पाये तो उन्होंने आनेवाली समस्त सन्तानों के लिए - हम सब के मंगल के लिए अपनी अनन्त आध्यात्मिक ऊर्जा आकाश में बिखेर दी थी। आइए, हम सब परम करुणामय कल्पतरु भगवान् श्रीरामकृष्ण के श्रीचरणों में पूरी आन्तरिकता से, पूरी आस्था से, अपनी समग्रता से प्रार्थना करें कि उनकी कृपा की ऊर्जा तरंग हममें प्रवेश कर हमें अमर जीवन, अखण्ड जीवन, धन्यता और पूर्णता का जीवन, आनन्द और उत्सव का चिर जीवन प्रदान करे।

इसी जनवरी महीने में विश्ववंद्य युगनायक स्वामी विवेकानन्द का अवतरण आज से १३२ वर्ष पूर्व हमारी भारत भूमि पर हुआ था। इसलिए श्रीरामकृष्ण-परिवार के लिए विशेषतः और समग्र विश्व के लिए सामान्यतः यह जनवरी का महीना द्विवार धन्य है।

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व उस हिमालय की भाँति है जिसकी ऊँचाई को हम अपने हाथों से नहीं माप सकते। उनका व्यक्तित्व उस सागर की भाँति है जिसकी गहराई की अतलता में हम प्रवेश नहीं कर सकते। विवेकानन्द को समझने के लिए कोई विवेकानन्द ही समर्थ हो सकेगा। इसी से उन्होंने स्वयं एक दिन स्पष्ट स्वरों में कहा था— "यदि एक और विवेकानन्द होता तो वह जान सकता था कि विवेकानन्द ने क्या किया।" और अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मानों स्वयं अपना मूल्यांकन करते हुए और हम सब को एक सबल आश्वासन देते हुए उन्होंने बद्बुदाया था— "उसमें क्या बिगड़ा, मैं आनेवाले पन्द्रह सौ वर्षों के लिए यथेष्ट कर चुका हूँ।"

वस्तुत: स्वामीजी ने ऐसे अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये जिनका उपयोग भारत की जनता अगले डेढ़ हजार वर्षों तक करती रहेगी। उन्होंने शक्ति की, महाशक्ति की एक ऐसी ऊर्जा का प्रवाह अपने भीतर से किया जिसका उपयोग कर हम आनेवाली सहस्राब्दियों तक अपने को समुन्नत बना सकते हैं। महर्षि अरविन्द ने इसीसे घोषणा की थी—"यदि इस जगत् में कोई महाशक्ति-सम्पन्न महात्मा हुआ है तो वे स्वामी विवेकानन्द थे। एक साक्षात् पुरुष-सिंह, जिनके द्वारा हमारे लिए किया हुआ कार्य, उनकी जन-निर्माण शक्ति तथा सामर्थ्य हमारी कल्पना से तोली भी नहीं जा सकती। हम अभी भी उनके प्रभाव की अतिमानवीय-क्रिया देख पाते हैं। यद्यपि हम निश्चित रूप से नहीं जान पाते कि किस भाँति या कहाँ पर—एक सिंह सदृश, भव्य अन्तर्ज्ञान युक्त कुछ अनभिव्यक्त महापरिवर्तन भारत की आत्मा में प्रविष्ट हुआ है, और स्वत: ही हमारे हृदय से उद्गार निकल पड़ता है—देखो! विवेकानन्द अभी अपनी मातृभूमि की आत्मा में तथा उसकी सन्तानों की आत्माओं में जीवित हैं।"

हम विवेकानन्द की सन्तान हैं। वे तमाम लोग जो एक आन्तरिक शक्ति में विश्वास करते हैं, अपनी दिव्यता और ब्रह्मत्व में विश्वास रखते हैं, जो त्याग और सेवा को अपना आदर्श मानते हैं, जो भारत के पुनर्निर्माण में अपनी बलि देने के लिए समुद्यत हैं, जो प्रत्येक जीव में शिव का दर्शन करने की दृष्टि रखने को आतुर हैं, जो सभी धर्मों को एक ही परमात्मा की ओर जाने का मार्ग मानते हैं, जो पवित्रता और नैतिकता से अपने जीवन की छवि सँवारना चाहते हैं, जो किसी भी प्रकार के पाप, दुर्बलता, अपराध, कापुरुषता और हीनता के समक्ष नत मस्तक नहीं होते, विवेकानन्द की सन्तान हैं। हमें गर्व से उद्घोष करना चाहिए कि हम विवेकानन्द की सन्तान हैं। आओ, गर्व से कहो कि हम स्वामी विवेकानन्द की सन्तान हैं। हम दुर्बल नहीं हो सकते। हम पाप और अपराध नहीं कर सकते। हम कायर और क्लीव नहीं हो सकते। हम अपने देश के पुनर्निर्माण के लिए परिकर बद्ध हैं। हम ईर्ष्या द्वेष से मुक्त, अभय में प्रतिष्ठित, आनन्द में स्थित, दीन दलितों को गले लगाकर उनके अभ्युत्थान के लिए प्रतिबद्ध हैं, क्योंकि हम विवेकानन्द की सन्तान हैं।

कौन हो सकता है विवेकानन्द की सन्तान? वह जो उनके आदर्शों को वहन करने में सक्षम, समर्थ हो। आखिर है, शौर्यवान, वीर्यवान, तेजोदीप्त, पौरुष-सम्पन्न युवा ही स्वामीजी के सपनों के सार्थवाह हो सकते हैं। इसी से स्वामीजी को युवकों से बड़ी आशाएँ-अपेक्षाएँ थीं। वे कहते हैं—"मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्त्ताओं को

संग्रह करूंगा। वे सिंह-विक्रम से देश की यथार्थ उन्नति सम्बन्धी सारी समस्याओं का समाधान करेंगे।"

स्वामीजी चाहते थे कि हमारे युवक आलस्य, जड़ता और अथर्व को त्याग कर अपनी पूरी ऊर्जा से जग उठें और अपने भीतर के ब्रह्मत्व को जगावें तथा दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दें। वे युवकों से मनु की इस वाणी की अपेक्षा करते थे—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।"

अर्थात् भारत में जन्म ग्रहण करनेवाले वरिष्ठ सज्जनों से सीखकर पृथ्वी समस्त मानव अपने-अपने चरित्र का गठन करेंगे।

इसीसे स्वामीजी ने युवकों को उत्प्रेरित करते हुए कहा –"चरित्रवान बनो और अपना वास्तविक व्यक्तित्व अभिव्यक्त करो। जो देदीप्यमान है, उज्ज्वल है और पवित्रतापूर्ण है, और प्रत्येक प्राणी में वही व्यक्तित्व उभारने का प्रयत्न करो।" वे पुनः कहते हैं—"तुम्हारे अन्दर पूर्ण शक्ति निहित है, तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। इस शक्ति को पहचानो, यह मत सोचो कि तुम निर्वल हो। तुम बिना किसी की सहायता लिये ही सब कुछ करने में समर्थ हो। सर्व शक्ति तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। उठो! और अपना अन्तःस्थ ब्रह्मभाव अभिव्यक्त करो। उठो, जागो, अब और मत सोओ। तुम्हारे प्रत्येक के भीतर एक शक्ति विद्यमान है जिसके द्वारा तुम सम्पूर्ण अभाव व दुखों को दूर कर सकते हो।"

आज हमारे युवक जो हिंसा कदाचार, परीक्षा में नकल, मादक द्रव्यों का सेवन एवं अन्य दुराचार करते दीख पड़ते हैं उसका कारण है उनकी दुर्बलता। वे अपने अभावों और विफलताओं का जो रोना रोते हैं, उसका कारण है अपनी अन्तर्निहित शक्ति को नहीं जानना, अपने भीतर के ब्रह्म भाव से अनभिज्ञ रहना। किन्तु स्वामीजी युवकों को यह सन्देश देते हैं कि तुम अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हो। कोई तुम्हारा उपकार करने के लिए आगे नहीं आयेगा। तुम्हें स्वयं ही अपना हित करना होगा। तुम आज जो भी हो उसके लिए तुम, स्वयं तुम जिम्मेवार हो।

अतएव, अपरा एवं परा विद्या, भौतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर अपने को एक पूर्ण, समग्र मानव बनाना युवकों का परम कर्त्तव्य है।

युवकों को स्वामीजी ने और भी अनेक बातें बतायी हैं, अनेक शिक्षा-निर्देश दिये हैं और जीवन-निर्माण में सहायक सन्देश दिये हैं। उन्हें प्रेम का मंत्र दिया है, राष्ट्र निर्माण की प्रेरणा दी है, दीन-दुखियों, अशिक्षितों और ताप तप्त प्राणियों के उद्धार के लिए अपने प्राणों की बलि देने को तत्पर रहने का सन्देश दिया है।

मेरे युवा मित्रो! तुम चाहे युवक हो या युवती, तुम्हें स्वामीजी की ओर लौटना होगा। वे तुम्हारे प्रेरणा-पुरुष हैं, शक्ति के अग्नि मन्त्र के उद्गाता हैं और तुम्हारे सच्चे मित्र, सच्चे पथ-प्रदर्शक हैं। तुम उनकी वाणियों का अग्नि-स्पर्श करो। तुममें जीवन की ऊष्मा आयेगी. यौवन की ऊर्जा का सही उपयोग करने का बल आयेगा। स्वामीजी तुम्हारे वास्तविक आदर्श हैं—अमन्द आदर्श। तुम्हारे जीवन को सार्थकता और धन्यता के शिखर पर प्रतिष्ठित करने वाले वे सच्चे सहचर हैं। तुम अपना आत्मबल जगाओ और दृप्त कंठ से कहो—युवकों के आदर्श अमन्द : विवेकानन्द-विवेकानन्द !!

अध्यात्मविद्-विवेकानन्द

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

स्वामी विवेकानन्द एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष थे। वे प्रखर मेधा-सम्पन्न मूर्धन्य विद्वान थे, अत्यन्त प्रभावशाली दैवी शक्ति संपन्न वक्ता थे, लेखक, कवि, देशभक्त, समाज सुधारक थे। लेकिन इन सभी प्रतिभाओं के अतिरिक्त वे एक सन्त भी थे। या यों कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा कि सर्वोपरि वे एक तत्वविद् आत्मविद् ब्रह्मविद्, अध्यात्मविद् मंत्र-द्रष्टा ऋषि थे।

आत्मविद् कौन ?

जो देह-मन के संघात से पृथक् अपने वास्तविक आत्म-स्वरूप को जानता है, जिसने अपने नित्य, चिन्मय, आनन्दस्वरूप आत्मस्वरूप का अपरोक्ष अनुभव किया है, वह आत्मविद् या अध्यात्मविद् कहलाता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मानव को मानो दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, देह-इन्द्रिय-प्राण-मन-बुद्धि का संघात मानव का बाहरी अथवा प्रातिभासिक रूप है, तथा उसकी नित्य शाश्वत् अपरिवर्तनशील आत्मा उसका वास्तविक स्वरूप है। इस अन्तरस्थ आत्मा को हाथ पर रखे आंवले के समान जानना ही जीवन का चरम उद्देश्य है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार यह आत्मा सर्वव्यापी, ब्रह्म के साथ अभिन्न है। अत: आत्मविद् को ब्रह्मविद् भी कहा जाता है।

लेकिन इस आत्मतत्व को जानने के लिए अपनी बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी करना आवश्यक है। कठोपनिषद् में कहा गया है :

> पराचिनि व्यतृणत् स्वयंभू:
> तस्मात् पराग्पश्यति नान्तरात्मन्।
> कश्चित् धीर: प्रत्यगात्मानमैक्षत्
> आवृत्तचक्षु: अमृतत्वमिच्छन्।

अर्थात् परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है। इसलिए वे सर्वदा बाहर की ओर ही देखती रहती हैं। अन्तरात्मा को नहीं देखती। कोई बिरले धीर पुरुष, ही अमृतत्व की इच्छा करता हुआ अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी आवृत्त चक्षु करके प्रत्यगात्मा का साक्षात्कार करता है।

स्वामी विवेकानन्द का आध्यात्मिक विकास :

यह अन्तर्मुखीनता, स्वामी विवेकान्द का एक स्वाभाविक गुण था जो उनमें बाल्यकाल से ही विद्यमान था। श्रीरामकृष्ण ने इसे तत्काल, भाप लिया था। युवक नरेन्द्रनाथ की प्रथम दक्षिणेश्वर यात्रा का वर्णन करते हुए श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि उस समय उसके बाल बिखरे हुए थे, तथा उन्हें अपने कपड़े, बालों और शरीर आदि का बिलकुल भान नहीं था, उसके मन का अधिकांश भाग अन्तर्मुखी था। उनकी ऐसी योग्यता देख कर श्रीरामकृष्ण तत्काल उन्हें आत्मा का साक्षात्कार कराना चाहते थे। इसी लिए उन्होंने नरेन्द्र की अगली दक्षिणेश्वर यात्रा के अवसर पर उन्हें स्पर्श कर ब्रह्मविद् के पद पर स्थापित कराने का प्रयास किया था। नरेन्द्र इस स्पर्श के सर्वविद्युतकारक प्रभाव को पूरी तरह सहन करने में असमर्थ भले ही रहे हों, पर अन्य

एक अवसर पर श्रीरामकृष्ण के स्पर्श से उन्हें सर्वत्र ब्रह्मदर्शन होने लगे थे। सड़क, मकान, व्यक्ति, गाड़ी इत्यादि सभी उन्हें चैतन्य प्रतीत होने लगे थे। यह अवस्था तीन दिन तक बनी रही थी, और इसके बाद धीरे-धीरे विलुप्त हुई थी। लेकिन परवर्ती जीवन में यह उनके लिए स्वाभाविक हो गयी थी।

यह भी सर्वविदित है कि स्वामी विवेकानन्द को निर्विकल्प समाधि की उपलब्धि हुई थी, जिस स्थिति में आत्मा और ब्रह्म के एकत्व का अभिन्नत्व का अपरोक्ष ज्ञान होता है। लेकिन इस उपलब्धि के पूर्व स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वार्तालाप हुआ था। श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा था कि वे क्या चाहते हैं। इसके उत्तर में नरेन्द्र (विवेकानन्द) ने कहा था कि वे शुकदेव की तरह सर्वदा निर्विकल्प समाधि में डूबे रहना चाहते हैं। इस पर श्रीरामकृष्ण ने कुछ अप्रसन्न होते हुए कहा था कि यह इच्छा तो तुझ जैसे उत्तम अधिकारी के लिए ओछी है, छोटी बात है। इससे भी ऊँची एक अवस्था है। वे चाहते थे कि नरेन्द्र संसार के दुःखी तापित प्राणियों के लिए वटवृक्ष की तरह आश्रयदाता बने। श्रीरामकृष्ण का तात्पर्य यह था कि निर्विकल्प समाधि में जिस ब्रह्म का आँखें बन्द करके, आत्मा के साथ एकत्व अनुभव किया जाता है वही ब्रह्म संसार के समक्ष प्राणियों में ओतप्रोत रूप से विद्यमान है। उसका उस तरह अनुभव करना तथा उन प्राणियों की ब्रह्म के रूप में, अपनी आत्मा के रूप में जान कर सेवा करना निर्विकल्प समाधि से भी ऊँची अवस्था है।

श्रीरामकृष्ण की कृपा से निर्विकल्प समाधि की उपलब्धि होने पर भी स्वामीजी की सदा उसी समाधि-सुख में विलीन रहने कि इच्छा बनी रही थी। अतः वे श्रीरामकृष्ण की महा समाधि के बाद हिमालय की ओर इस आशा से अग्रसर हुए कि वहाँ किसी गुफा-कन्दरा में बैठकर समाधि के लिए पुनः प्रयास करेंगे। समाधि योग्य शारीरिक क्षमता की प्राप्ति के लिए उन्होंने गाजीपुर में रह कर पवहारी बाबा से हठ योग सीखने का भी प्रयत्न किया। लेकिन धीरे-धीरे श्रीरामकृष्ण के कथन, कि ब्रह्म समस्त प्राणियों में विद्यमान है, की सत्यता उनके सामने स्पष्ट होने लगी। वे भारत भ्रमण करते हुए भारत के उत्तरी शिखर के बदले दक्षिणतम छोर पर कन्याकुमारी पहुँच गये। वहाँ समुद्र में स्थिर एक शिला पर बैठकर उन्होंने उस ब्रह्म का ध्यान किया जो संसार के विशेषकर गरीब और अज्ञानी भारतवासियों के रूप में करोड़ों रूप धारण किये विराज कर रहा है, जो अपने दिव्य, चैतन्य, नित्य, आनन्दमय स्वरूप को भूलकर दुःख पा रहा है। स्वामीजी ने उस शिला पर बैठकर इसी सुप्त, विस्मृत सर्वव्यापी ब्रह्म को जगाने की एक योजना खोज निकाली, जिसे लौकिक भाषा में भारतीय नवजागरण की संज्ञा दी जाती है।

ब्रह्मविद् विवेकानन्द में अद्वैतज्ञान की सहजता

अमेरिका के लिए रवाना होने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द अपने ब्रह्मज्ञान में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गए थे। अब वे अत्यन्त स्वाभाविक रूप में सर्वत्र सर्वावस्थाओं में आत्मदर्शन करने लगे थे। संसार के सभी लौकिक कार्य करते हुए भी उनका तीन चौथाई से भी अधिक मन अपने परमात्मस्वरूप में डूबा रहता था। अमेरिका में ट्राम से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते समय वे ट्राम में बैठते ही समास्थि हो जाया करते थे, जिसके कारण उनका गन्तव्य स्थान पीछे छूट जाता था और उन्हें ट्राम में सारा चक्कर लगाना पड़ता था।

एक बार उन्हें कहीं लेक्चर देने जाना था। उनके साथी उनके तैयार होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। देर होती देख एक व्यक्ति ने स्वामीजी के कमरे में आकर देखा कि वे आदम-कद आईने के सामने खड़े होकर गौर से उसमें प्रतिबिम्बित हो रहे अपने रूप को निहार रहे हैं। उसे लगा कि स्वामीजी संभवतः सामान्य अहंकारी व्यक्ति की तरह अपने ही शारीरिक रूप के प्रति मुग्ध हो रहे हैं। लेकिन स्वामीजी के अपने इस आचरण का कारण बताने पर उसकी भ्रान्ति दूर हुई। स्वामीजी ने कहा कि उनका मन अत्यधिक अन्तर्मुख होकर समाधि में विलीन होना चाहता था। उसे बाहर लाने के लिए वे अपने प्रतिबिम्ब पर एकटक निहार रहे थे।

अमेरिका में स्वामीजी के प्रवचनों को सुनने वाली एक महिला का कथन है कि जब स्वामीजी बोलते थे तो ऐसा लगता था मानो वे अनन्त की परिधि पर खड़े होकर बोल रहे हैं, मानो उनकी पृष्ठभूमि में अनन्त चैतन्य विद्यमान हैं, और वे मानो उसके मुँह हैं : अनन्त ही उनके माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है। स्वामी तुरीयानन्दजी का कथन है कि स्वामीजी जब "मैं" कहते थे, तो सदा अपने को ब्रह्म मानकर कहते थे, हमलोगों की तरह "मैं" से उनका अर्थ कभी भी देह-मन का संघात नहीं होता था। इस बात की पुष्टि स्वयं श्रीरामकृष्ण ने भी की है। कभी-कभी श्रीरामकृष्ण युवक नरेन्द्र और अन्य भक्तों को बाद-विवाद में लगाकर स्वयं आनन्द लेते थे। जब नरेन्द्र वार्तालाप के दौरान कहते थे कि मैं ही ब्रह्म हूँ, तो श्रीरामकृष्ण विपक्षी भाव से इसका अनुमोदन करते हुए कहते थे कि नरेन्द्र जो कहता है, ठीक कहता है। अन्य किसी व्यक्ति के मुँह से यह बात शोभा नहीं देती लेकिन नरेन्द्र की बात और है।

जो ब्रह्मज्ञ पुरुष सर्वत्र अपनी आत्मा को और अपनी आत्मा में सबका दर्शन करता है, वह कभी शोक, मोह, घृणा भयादि से प्रभावित नहीं होगा।

यस्तु सर्वाणिभूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं, न ततो विजुगुप्सते॥
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूत विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥

ईशा वास्योपनिषद (६-७)

अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक प्रवचन में यह बात कही। वहाँ के कुछ "काउ-बायस" ने उनकी परीक्षा की ठानी। उन्होंने स्वामीजी को अपने बीच लेक्चर के लिए आमंत्रित किया। अचानक भाषण के बीच दनादन गोलियाँ चलने लगीं और स्वामीजी के सिर के पास से निकल गयीं। लेकिन स्वामीजी अविचलित रहे और भाषण देते रहे। हजारों मील दूर हुए भूकंप में हताहत हुए लोगों की पीड़ा को स्वयं अपने कमरे में लेटे-लेटे अनुभव करना भी स्वामीजी की समस्त प्राणियों के साथ एकात्मता का दृष्टान्त है।

दूसरों में आत्मज्ञान संचार करने की क्षमता :

स्वामी विवेकानन्द आत्मज्ञानी ही नहीं थे, उनमें दूसरों में आत्मज्ञान पैदा करने की, उन्हें अपने स्वरूप को जानने में समर्थ बनाने की क्षमता भी थी। मद्रास के नास्तिक-वादी प्रोफेसर "किडि" को उन्होंने स्पर्श मात्र से आस्तिक एवं आत्म-परमात्मा के अस्तित्व में विश्वासी बना दिया। एक दिन बेलुर मठ में ही वार्तालाप करते करते स्वामीजी ने कहा कि ब्रह्म यहीं इसी समय विद्यमान है। उन्होंने यह बात इतनी जोर देकर कही कि वहाँ से गुजर रहे स्वामी प्रेमानन्दजी को

पैर रुक गये और वे समाधि की-सी अवस्था में उस समय तक वहीं स्थिर खड़े रहे, जब तक स्वामीजी ने उन्हें आगे बढ़ने को नहीं कहा। निश्चय ही स्वामी प्रेमानन्दजी जैसे महापुरुष को स्वामीजी के कथन से ही ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ था।

लेकिन सभी तो स्वामी प्रेमानन्दजी जैसे उत्तम अधिकारी नहीं होते। स्वामीजी ने भारत भ्रमण करके यही पाया था कि सारा भारत अज्ञान व तमोगुण के अन्धकार में डूबा हुआ है। स्वामीजी तो यही चाहते थे कि सभी अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करें, आत्मविद् बनें। वस्तुतः उनके स्वयं के अनुसार उनका सन्देश एवं जीवन का उद्देश्य भी यही था—सभी को उनके ब्रह्मत्व की शिक्षा देना और उन्हें यह बताना कि इसे कैसे अभिव्यक्त किया जाय। लेकिन जब उन्होंने देखा कि अधिकांश लोग वेदना के अधिकारी नहीं हैं, तब उन्होंने भारत के उत्थान की एक योजना बनाई जिसके द्वारा भारत का दारिद्रय और अज्ञान दूर किया जा सके।

इससे भिन्न, अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त का प्रचार किया। जब किसी ने आपत्ति की कि बिना अधिकारी देखे आप सभी को वेदांत का उपदेश क्यों दे रहे हैं, तो उन्होंने कहा कि श्रीरामकृष्ण में कौन भक्ति का अधिकारी है, कौन ज्ञान का अधिकारी है इत्यादि को जानने की क्षमता थी। लेकिन मुझ में नहीं है मैं तो वेदान्त के रत्न बिखेरता जा रहा हूं। जो अधिकारी होगा वह ले लेगा।

उपसंहार :

स्वामी विवेकानन्द एक ब्रह्मविद् ऋषि ही नहीं थे, उनमें दूसरों को ब्रह्मविद् बनाने की दुर्लभ क्षमता भी थी। उनके सारे सामाजिक, लौकिक एवं राष्ट्रीय प्रयासों के पीछे यही एक बृहत एवं चरम उद्देश्य निहित था—दूसरों को अपने ब्रह्मस्वरूप के प्रति सजग करना तथा ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना, जो अन्ततोगत्वा सभी को उनके स्वरूप की अभिव्यक्ति और आत्मज्ञान प्राप्ति में सहायक हो। राष्ट्र भक्त, समाज-सुधारक, शिक्षाविद्, वाग्मी स्वामी विवेकानन्द की प्रतिभा को स्वीकार करते हुए भी हमें कभी भी उनके वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मविद् विवेकानन्द को भूलना नहीं चाहिये।

वक्ता

कलकत्ता के मैट्रोपोलिन इंस्टीट्यूट के एक वरिष्ठ अध्यापक की सेवा निवृत्ति के अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया था। इस सभा में सभी शिक्षक, विद्यार्थी तथा अभिभावक भी मौजूद थे और अध्यक्षता कर रहे थे प्रगल्भ वक्ता सुरेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय। उनके पास अथाह शब्द भण्डार तो था ही, भाषा पर भी उनका अच्छा अधिकार था। इसके साथ-साथ सबसे बड़ी बात यह थी कि वे शुद्ध उच्चारण पर बहुत ज्यादा ध्यान दिया करते थे। वे जिस किसी को भी अशुद्ध उच्चारण करते या असंगत शब्दों का प्रयोग करते सुनते तो उसे झिड़क दिया करते थे। यही कारण था कि उनके सामने भाषण देने का हर कोई साहस नहीं कर सकता था।

इस सभा में भी किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह श्रोताओं को सम्बोधित करें। छात्र क्या, अध्यापक तक सहमें हुए थे। जब कोई भी वक्ता तैयार नहीं हुआ तो एक विद्यार्थी खड़ा होकर स्टेज पर आ गया और भाषण देने के लिए अध्यक्ष महोदय से अनुमति मांगी। अध्यक्ष ने बालक की भावनाओं की कदर करते हुए बोलने की आज्ञा दे दी। उस छात्र ने शुद्ध अंग्रेजी में आधे घण्टे तक इतना गम्भीर और मर्मस्पर्शी भाषण दिया कि उपस्थित जन समूह ने उनके वक्तव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभा के अध्यक्ष सुरेन्द्र नाथ बंद्योपाध्याय ने उसे गले से लगा लिया और आशीर्वचन दिया कि इस छात्र का भविष्य उज्ज्वल है और आगे चलकर यह अपने देश का नाम रोशन करेगा। वे वक्ता थे—स्वामी विवेकानन्द।

भारत के दो महान् ज्योतिर्धर : स्वामी विवेकानन्द तथा श्री वीरचन्द गांधी

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सम्पादक, रामकृष्ण ज्योत,
—रामकृष्ण आश्रम, राजकोट
—अनुवाद : अशोक 'चंचल'

बात ११-१८९३ सितम्बर, की है। शिकागो में ऐतिहासिक विश्वधर्म संसद आयोजित की गयी है। आर्ट इन्स्टीट्यूट का कोलंबस हॉल देश-विदेश के लगभग चार हजार विद्वान प्रतिनिधियों से खचाखच भरा हुआ है। सभा-मंच पर विश्व के विभिन्न धर्मों के अग्रणी नेता विराजमान हैं। इन सब के बीच दो नवयुवक अपनी पोशाक और पगड़ी के कारण सबके आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। इनमें एक हैं, विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्द तथा दूसरे हैं—जैन धर्म के प्रतिनिधि श्री वीरचन्द राघवजी गांधी। दोनों महानुभावों ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा, विद्वत्ता तथा व्यक्तित्व के माध्यम से ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया कि विश्वपरिषद् की समाप्ति के पश्चात् भी उन्हें अमेरिका में अपने व्याख्यान जारी रखने पड़े। स्वामीजी ने तीन वर्ष तक अमेरिका तथा यूरोप में विविध विषयों पर असंख्य व्याख्यान प्रस्तुत किये। वे १५वीं जनवरी १८९७ को स्वदेश वापस आये। तत्पश्चात् २० जून १८९९ से ९ दिसम्बर १९०० तक उन्होंने अमेरिका और यूरोप की दूसरी बार यात्रा की।

श्री वीरचन्द जैन ने भी धर्म संसद की पूर्णाहुति के बाद अमेरिका में जैन धर्म के संदर्भ में अपने प्रवचन जारी रखे और १८९६ एवम् १८९९ में दो बार अमेरिका प्रवास किया। उन्होंने ६५० प्रवचन प्रस्तुत किये।

भारतीय संस्कृति तथा अध्यात्म के इन दो महान् ज्योतिर्धरों में कितनी ही बातों में अद्भुत समानताएँ थीं।

दोनों ही समवयस्क थे। स्वामी विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता में १२ जनवरी १८६३ को हुआ था। श्री वीरचन्द गांधी ने २५ अगस्त १८६४ को महुवा में जन्म लिया था। दोनों कर्मयोगी थे। कर्म करते हुए स्वयं को बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय सौंपते हुए अल्पवय में दोनों ही इस क्षणभंगुर दुनिया से महाप्रयाण को चल पड़े।

स्वामी विवेकानन्द ने कलकत्ते में बेलुड़ मठ में अपनी कोठरी में ही ४ जुलाई १९०२ को मात्र ३९ वर्ष की उम्र में महासमाधि ली; तो वीरचंद गांधी का देहविलय ७वीं अगस्त १९०१ को ३७ वर्ष के वय में हुआ।

दोनों ही करुणामूर्ति थे— 'शिवभाव से जीव सेवा' के आदर्श के अनुसार स्वामीजी ने अपना सर्वस्व सेवाकार्यों में अर्पित किया। दरिद्र नारायण और रोगी नारायण की सेवा में जुट जाने के लिए स्वामीजी ने अपने शिष्यों को आह्वान किया। 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' के आदर्श को केन्द्र में रखकर 'रामकृष्ण मिशन; की स्थापना की। सन् १८९८ में जब कलकत्ता में प्लेग की महामारी फैली तब अस्वस्थ होने पर भी शिष्यों के साथ वे प्राणर्पण की भावना से राहत के कार्य में लग गये। राहत कार्य हेतु जब फंड का अभाव हुआ तब अपने जीवन भर की साधना तथा श्रम से प्राप्त बेलुड़मठ की जमीन को बेचने के लिए भी वे तैयार हो गए। हालांकि, श्रीमां सारदा देवी के निर्देश एवम् अनपेक्षित सहाय प्राप्त होने से रामकृष्ण मिशन मुसीबतों से बच गया। किन्तु, यह सूचक है—स्वामीजी के हृदय की विशालता का।

श्री वीरचंद गांधी भी करुणामूर्ति ही थे। १८९६ में जब उन्हें भारत के अकाल का समाचार अमेरिका में मिला तब विश्व धर्म परिषद् के प्रमुख सी०सी० बोनी के अध्यक्षपद तथा स्वयं के मंत्रीपद के अधीन एक राहत समिति की स्थापना की। शिकागो की जनता को दर्दभरी अपील की गयी। फलस्वरूप, अविलंब अन्न से भरा हुआ एक जहाज भारत के लिए रवाना किया गया। शिकागो की जनता ने वीरचंद भाई की झोली छलका दी। लगभग चालीस हजार रुपये देश के विभिन्न भागों में राहत हेतु भेजे गये।

स्वामीजी ने कहा था—"शिक्षा, शिक्षा, शिक्षा। भारत की सभी समस्याओं का समाधान शिक्षा में ही निहित है।" आम लोगों और नारी शिक्षण पर अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था। देश में नारी—जागरण तथा शिक्षण के वे सर्वप्रथम हिमायती थे।

श्रीवीरचंद गांधी ने भी भारत में तथा विशेषत: जैन समाज में नयी शिक्षा का व्यापक प्रचार किया था। तत्संबंधी सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु भी अथक् प्रयत्न किये थे। यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि अमेरिका में 'International Society for the education of women in India' नाम की एक संस्था स्थापित की गयी। श्री गांधी के प्रयासों से ही तीन भारतीय बहनों को इसके द्वारा निवास और अभ्यास हेतु खर्च की सहूलियत प्राप्त कर अमेरिका भेजा जा सका था। भारतीय सन्नारी समाज में अपना स्थान समझें तथा साक्षर शिक्षित महिलाएं सावित्री, मैत्रेयी, गार्गी, तथा दमयंती की तरह अपनी गरिमा की पुनः प्राप्ति करें—बस, यही उद्देश्य है इस संस्था का।

दोनों ही महापुरुषों के जीवन काल में जाति बंधन, संकीर्ण दृष्टि तथा विदेशयात्रा का विरोध होते हुए भी उन्होंने धर्म का प्रचार करने हेतु सागर यात्रा की। इसी कारण से इन दोनों को विदेश जाने के पूर्व तथा विदेश जाने के बाद बहुत कुछ सहन करना पड़ा था। समुद्र यात्रा हिन्दू शास्त्रों में निषिद्ध है—ऐसा विधान कर पोंडीचेरी के पंडितों ने स्वामीजी विदेशयात्रा के निर्णय का विरोध किया था। विदेश से वापस आने के बाद विश्वविजयी बनने के बाद उन्हें इसके लिए बहुत कुछ सहन करना पड़ा था।

शिकागो की धर्म सभा में जैन धर्म प्रतिनिधि के रूप में परिषद् में भाग लेने के लिए श्री पू० आत्मारामजी महाराज को निमंत्रण मिला था, परन्तु जैनाचार के अनुसार विदेशयात्रा न हो सकती थी। इसीलिए उन्होंने "धी जैन एसोसीए-शन ऑफ इण्डिया, के मंत्री श्री वीरचंद भाई को

छः महीने तक अपने पास जैन धर्म का विशिष्ट अध्ययन कराया तथा परिषद् को केन्द्र में रखकर 'शिकागो प्रश्नोत्तर' नामक ग्रंथ तैयार कराया किन्तु, श्री वीरचंद भाई की विदेशयात्रा के विरोध में ६वीं जुलाई, १८९३ को एक जाहेर पत्रिका का वितरण किया गया। इस पत्रिका में १३९ जैनों के दस्तखत थे। विदेशयात्रा से वापस आने के बाद श्री वीरचंद भाई की सभा में हंगामा खड़ा हुआ, कुर्सी उछाले गये। 'वीरचंद गांधी को जाति से निष्कासित करो' का नारा लगाया गया; और भी धमकियाँ मिलीं। समाज की ऐसी स्थिति में दोनों महावीरों ने सच्चे धर्म का दृष्टिकोण प्रदान किया। सत्य में अडिग रहकर धर्म की रक्षा की, देश की कीर्ति को उन्नत किया।

दोनों ही महामानव एक-दूसरे को चाहते थे। एक-दूसरे के प्रशंसक थे। श्री वीरचंदभाई ने अमेरिका से प्रकाशित पत्रिका एरेना (Arena) के जनवरी १८९५ के अंक में धर्म परिषद् में स्वामी विवेकानंद के प्रभाव के बारे में लिखा था कि— "शिकागो धर्म परिषद् की वास्तविकता यह है कि भारत के एक सुन्दर वक्ता के भाषण के बाद कोलम्बस हॉल के दो तिहाई लोग बाहर निकलने लगते थे।" ये प्रभावशाली वक्ता स्वामी विवेकानन्द ही थे इसका प्रमाण 'नोर्थोम्पटन डेली हेराल्ड' (अप्रैल ११, १८९४) के वर्णन से मिलता है; "शिकागो धर्म परिषद् में स्वामी विवेकानन्द को कार्यक्रम के अन्त तक बोलने न दिया जाता जिसका कारण यह था कि लोग रात्रि के अन्त तक बैठे रहें ...... जिस दिन गर्मी अधिक पड़ी हो और किसी प्रोफेसर ने लम्बा भाषण दे रखा हो तो लोग सैकड़ों की संख्या में सभाखण्ड के बाहर जाने लगते थे। वैसे समय में मात्र इतनी-सी उद्घोषणा की ही आवश्यकता रहती थी कि, 'सभा के अन्त में स्वामी विवेकानन्द एक संक्षि[illegible] भाषण देंगे'—और हजारों श्रोताजन उनके पं[illegible] मिनट भाषण सुनने के लिए घण्टों तक प्रती[illegible] करते रहते।"

'ईर्ष्या अपने देश का जातिगत दोष है'—ऐ[illegible] स्वामी विवेकानन्द कहते थे। अमेरिका में स्वामी[illegible] जब असाधारण ख्याति प्राप्त करने लगे त[illegible] उनके भारतीय मित्र ही ईसाई मिशनरियों [illegible] साथ मिलकर उनके विरुद्ध भ्रामक प्रचार कर[illegible] लगे। यहाँ तक कि उनके चरित्र पर भी दोष[illegible] रोपण किया जाने लगा। ऐसे विकट समय [illegible] स्वामीजी के शुभेच्छुक जूनागढ़ के दीवान हरिदा[illegible] बिहारीदास देसाई ने स्वामीजी के अमेरिक[illegible] मित्रों को स्वामीजी के महत् चरित्र के बारे[illegible] लिखकर उन्हें इस निंदा दोष से बचाने का प्रयत्[illegible] किया। इस प्रक्रिया में जूनागढ़ के दीवान जी [illegible] संपर्क में आये हुए तथा स्वामीजी के सहृदय मित्र[illegible] श्री वीरचंद गांधी ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अद[illegible] की। ईसाई मिशनरी मि० ह्यूम के साथ स्वामीज[illegible] का विवाद उत्पन्न हुआ—उस समय समाचार[illegible] पत्रों में एक युद्ध का श्री गणेश हुआ। ऐसे विकट समय में उनके पक्ष में तब श्री वीरचंद गांधी और श्री पुरुषोत्तम राव तेलंग ही थे। स्वामी विवेकानंद के बारे में संशोधन कार्य कर 'विवेकानंद इन द[illegible] वेस्ट: न्यू डिस्कवरीज' नामक ग्रंथ (छः भागों में) प्रकाशित कर अभूतपूर्व कार्य करनेवाली मेरी लुई बर्क (सिस्टर गार्गी) लिखती हैं—

"The Hume-Vivekananda letters set of[illegible] a bitter debate which lasted into the earl[illegible] part of 1895 and which was published i[illegible] various widely read periodicals such as th[illegible] Forum, the Arena, the Monist, and so o[illegible] The Principal antagonists were, on th[illegible] missionary side: the Right Reverend M[illegible]

सब दु[illegible] त्याग शरण लो उनकी
पाओगे विसराम ॥३॥
दुर्लभ मानव जीवन पाकर
ढूंढ़ो परम ठिकाना,
प्रभुका चारु रूप बिसराकर
भव से चित न लगाना;
सत्संगति में भाव-भक्ति में
बीतें आठों याम ॥४॥
जाती नहीं सहज ही मन से
इस जीवन की आशा,
चाहे जितनी भी पी डालो
मिटती नहीं पियासा;
फिर क्यों करते इनके पीछे
अपनी नींद हराम ॥५॥
करना सब कर्तव्य जगत् के
सम्मुख जो भी आये,
निज कल्याण इसी में जानो
भाये या ना भाये;
प्रभु की सेवा मानो सब कुछ
उनके रहो गुलाम ॥६॥
नर-नारी का भेद न करना
क्षणभंगुर यौवन है,
माटी में मिलनेवाला यह
मृण्मय मानव तन है;
ध्यान करो प्रतिपल उनका ही
चिन्मय रूप ललाम ॥७॥
परचर्चा में भाग न लेना
सबमें गुण होता है,
नीम पुष्प से भी ज्यों मधुकर
रसकण ले लेता है;
असत् जनों के जीवन में भी
पाओगे गुणग्राम ॥८॥
मत रहना उत्सुक सुनने को
अपनी मान-बड़ाई,
सब छोड़ा है इतना भी क्या
छोड़ न सकते भाई;
प्रभु की कृपादृष्टि ही अब तो
अपना भेंट-इनाम ॥९॥
यश-अपयश चाहे जो होवे
मत करना परवाह,
भोग-कामना अति दुखदाई
छोड़ो इनकी चाह;
बीत न जाए जीवन यूं ही
सब निष्फल बेकाम ॥१०॥
हानि-लाभ सुख-दुख के क्षण में
संयत रखना मन को,
जग की उथल-पुथल के भीतर
मत खोना जीवन को;
जाना होगा छोड़ सभी कुछ
सुत-दारा अरु दाम ॥११॥
सबके भीतर देखो प्रभु को
सबमें वास उन्हीं का,
बन जाओगे प्रिय तुम उनके
कर सम्मान सभी का,
कण-कण में हैं ओत प्रोत वे
सबको करो प्रणाम ॥१२॥
मन को नित्य लगाए रखना
उनके चरण कमल में,
जग में रहकर लिप्त न होना
ज्यों पंकज हो जल में;
करते रहना प्रतिपल उनका
स्मरण-मनन अविराम ॥१३॥
सा[illegible]ी बनकर रहना सीखो
द्वेष न हो, ना राग,
करना हीं है तो कर लेना
प्रभु[illegible]द से अनुराग;
खेल-तमाशे छोड़ो अब तो
घिर आयी है शाम ॥१४॥
नाम-रूप से नाता तोड़ो पकड़ो सच्चित् सार,
इसी तरह तुम भवबन्धन से पाओगे निस्तार;
फिर 'विदेह' होकर जाओगे 'परमहंस'
के धाम ॥१५॥

स्वामी विवेकानन्द के दर्शन में सद्भाव

—श्री जयगोविन्द राय
वाराणसी

हजारों वर्ष पूर्व प्राचीन काल में भारत के ऋषियों, मुनियों, चिंतकों और दार्शनिकों ने विचार मंथन करके मानव जीवन के शाश्वत मूल्यों पर आधारित एक ऐसे उदार समन्वयवादी विचारधारा को जन्म दिया था जो आज भी गंगा की पावन धारा की भाँति सतत् प्रवहमान है एवं आधुनिक युग के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक तथा कल्याणकारी है।

ऋषियों की इसी परम्परा और श्रृंखला में आते हैं स्वामी विवेकानन्द। उनके परम पूज्य गुरु परमहंस श्रीरामकृष्ण तो राम और कृष्ण के समन्वित रूप थे। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर समझ लिया था कि नरेन्द्रनाथ दत्त, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रख्यात हुआ, कोई साधारण युवक नहीं था। वह एक ऋषि था जो जीवों की दुर्गति दूर करने के लिए इस धराधाम पर अवतरित हुआ था।

श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को, जिन्हें वे प्यार से नरेन कह कर बुलाते थे, विश्व में प्रेम का, सेवा का, सद्भाव का, मिलजुल कर रहने तथा मानव जीवन को सार्थक बनाने का संदेश देने के लिए अपना माध्यम बनाया। देश तथा विदेश में सद्भाव का वातावरण बनाने में स्वामी विवेकानन्द के दर्शन की क्या भूमिका रही है और उसे कितनी सफलता मिली है इसे भलीभाँति समझने के लिए उस समय की धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि का सम्यक् विवेचन आवश्यक है।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों को भारत में व्यापार वाणिज्य करने के लिए मुगल दरबार से शाही फरमान मिला। उन्होंने बंगाल में भागीरथी के तट पर अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया और व्यापार करने लगे। अपनी गोदाम के लिए विशाल भवन बनाया और उसकी सुरक्षा के लिए सैनिक तैनात किये। व्यापार की सफलता से उनकी महत्वाकांक्षा बहुत बढ़ गयी। क्लाइव ने मुर्शिदाबाद के नवाब सिराजुदौला को प्लासी के युद्ध में हराकर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली। ईस्ट इण्डिया कम्पनी बणिक से धीरे-धीरे भारत का शासक बन गयी।

अंग्रेज अपने को भारतवासियों से बहुत अधिक बुद्धिमान, सभ्य और शिष्ट समझते थे। लार्ड मैकाले का कथन था कि हिन्दू धर्म अन्धविश्वासों का पुलिन्दा है और संस्कृत के सम्पूर्ण साहित्य में जो कुछ है उससे कहीं अधिक अंग्रेजी साहित्य की एक आलमारी में है। वे भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचलन कराने में सफल रहे। वास्तविकता यह थी कि वे संस्कृत वाङ्मय के अक्षय भंडार से बिलकुल अनभिज्ञ थे। अंग्रेजी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था प्रशासन में अंग्रेज

अफसरों की सहायता करने के लिए भारतीय युवकों को आफिस कर्मी के रूप में तैयार करना। उन्हें यह भी आशा थी कि हिन्दू युवकों को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट करने में यह शिक्षा सहायक सिद्ध होगी।

कलकत्ता का विकास व्यावसायिक नगर के रूप में तो हुआ ही, यह आधुनिक उच्च शिक्षा का एक बृहद् केन्द्र भी बना। यहाँ से सांस्कृतिक नव जागरण एवं पुनरुत्थान की प्रशंसनीय प्रचेष्टा भी हुई। राजाराम मोहन राय, पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, विजयकृष्ण गोस्वामी तथा केशवचन्द्र सेन जैसे मनीषियों ने अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत से लोगों को अवगत कराया और हिन्दू समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए समाज-सुधार सम्बन्धी आन्दोलन भी चलाया। उपनिषदों से अनुप्राणित होकर ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई जिसने शिक्षित वर्ग को प्रभावित किया। तरुण नरेन्द्रनाथ दत्त भी ब्रह्म समाज के सदस्य बने और इन मनीषियों के घनिष्ठ संपर्क में आये।

इन मनीषियों के सत्संग से नरेन्द्रनाथ की धर्म पिपासा उद्दीप्त अवश्य हुई किन्तु उसकी तृप्ति नहीं हुई। यदि ईश्वर है तो उसका दर्शन क्यों नहीं होता है? किसी को उसका दर्शन हुआ है क्या? कौन उन्हें ईश्वर का दर्शन करा सकता है? यह प्रश्न उनके मन को सब समय आलोड़ित करता रहता था।

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर उन दिनों अपने बजड़े में ध्यान धारणा के लिए एकान्तवास कर रहे थे। संध्या का अन्धकार घना हो आया था। नरेन्द्रनाथ पहुँच गये भागीरथी तट पर और महर्षि के बजड़े पर जाकर दरवाजा खटखटाया। महर्षि ने स्नेहाशीष देकर पूछा-क्या बात है? क्यों इस समय आये हो। तरुण नरेन्द्रनाथ ने विनम्रता के साथ आकुल कण्ठ से प्रश्न किया महाशय, क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है? मुझे भी दर्शन करा देंगे? महर्षि ने नरेन को गम्भीर और शान्त स्वर में उत्तर दिया—तुम्हें नहीं ईश्वर का दर्शन होगा तो किसे होगा? तुम एकाग्र चित्त से साधन भजन करो। भगवद् कृपाय तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।

नरेन्द्रनाथ इसी प्रश्न को लेकर रानी रासमनी द्वारा निर्मित भवतारिणी मंदिर में दक्षिणेश्वर पहुँच गये। उन्होंने वहाँ श्रीरामकृष्ण के समक्ष अपनी जिज्ञासा प्रकट की—महाशय, आपको ईश्वर दर्शन हुआ है क्या? परमहंस देव ने अविलम्ब सहज और असंदिग्ध भाव से उत्तर दिया—यह क्या कह रहे हो तुम? जिस प्रकार तुम्हें देख रहा हूँ उसी प्रकार तो प्रतिदिन उनका दर्शन होता रहता है। यदि तुम मेरी बात मानकर चलो तो तुम्हें भी दर्शन करा सकता हूँ।

आधुनिकता और भारतीय परम्परा एक दूसरे के आमने सामने खड़ी थी। नरेन्द्रनाथ ब्रह्मवाणी सुनकर आश्चर्य चकित थे। उनके जीवन में विशुद्धता थी, शाश्वत सत्य को पाने की तीव्र आकांक्षा थी। उनमें साधक और योगी के सब लक्षण विद्यमान थे। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य चिंतन से परिचित और आधुनिकता में शिक्षित उनका वैज्ञानिक मन परीक्षा—निरीक्षण किये बिना किसी बात को सहज ही स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। विज्ञान अध्यात्म के इस मिलन से एक नये युग का आरम्भ हुआ। साधना और तरुणाई दोनों का गठबन्धन हुआ जिससे मानवता को नई दिशा और सद्भाव का नया वातावरण बना। इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। सन् १८९३ में आयोजित शिकागो के विश्व-धर्म-महासम्मेलन

में दिये गये स्वामी विवेकानन्द के ऐतिहासिक भाषण से।

स्वामी विवेकानन्द को अद्वैत वेदान्त की शिक्षा अपने गुरु परमहंस श्रीरामकृष्ण से मिल चुकी थी। विश्व में जो कुछ है सब ब्रह्ममय है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ब्रह्म ही चितेरे हैं, वही चित्रपट हैं, रंग भरने की कूँची और रंग भी वही हैं। सृष्टि के कणकण में अपने को अभिव्यक्त कर रहे हैं। इसकी और घनीभूत अनुभूति स्वामीजी को भारत भ्रमण में हुई।

सन् १८९१ के प्रारम्भ में वे अकेले भारत भ्रमण के लिए निकल पड़े। उन्होंने गुरु भाइयों को बुलाकर कहा—"मेरे जीवन का व्रत सुनिश्चित हो चुका है। मेरा साथ छोड़ दो। अपना काम करो। अब मेरे साथ एक मात्र परमेश्वर रहेंगे।" उनके शरीर पर था गैरिक वस्त्र तथा हाथ में था दण्ड और कमण्डल। दो वर्ष तक वे हिमालय से कन्याकुमारी और द्वारिका से पुरी तक पूरे देश का भ्रमण करते रहे। कभी ग्राम में, कभी नगर में, कभी राजभवन में तो कभी दीन दरिद्र की झोपड़ी में। कभी ब्राह्मण के अतिथि तो कभी अस्पृश्यों को धन्य करते हुए उनके सुख दुःख के भागीदार।

गुजरात में पोरबन्दर की राजसभा के प्रख्यात पण्डित पाण्डुरंग के साथ वे नव मास रह गये। वहाँ उन्होंने वेद और पतंजलि योग सूत्र का भलीभाँति अध्ययन किया तथा पंडित जी के कार्य में सहायता की। पंडित पांडुरंग' ने उनसे कहा—"स्वामीजी, आप पाश्चात्य देशों में जाकर भारतीय सनातन धर्म के तत्व की व्याख्या करें। इससे पाश्चात्य और प्राच्य दोनों को कल्याण होगा।" एक प्रकार से विदेश जाने के लिए पंडित पाण्डुरंग ने स्वामीजी के हृदय में बीजारोपण किया था।

स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं कि इस समय स्वामीजी का हृदय अग्निकुण्ड के समान हो गया था। भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता को किस प्रकार पुनः प्रतिष्ठित किया जाय वे अहर्निश इसी के विषय में सोचते थे।

इसी समय मद्रास के कुछ भक्तों ने स्वामीजी से शिकागो विश्व-धर्म-संसद् में जाने का अनुरोध किया और यात्रा व्यय के लिए कुछ चन्दा भी इकट्ठा किया। उन्होंने माँ शारदा को पत्र लिखा—माँ महावीर जिस प्रकार राम का नाम स्मरण करके कूद कर समुद्र पार चले गए थे, मैं भी गुरु महाराज का स्मरण करके समुद्र के उस पार जाना चाहता हूँ। माँ सारदा ने उन्हें स्नेहाशीष के साथ अनुमति प्रदान की। राजा साहब खेत्री ने भी स्वामीजी को शिकागो जाने के लिए प्रोत्साहित किया और अर्थ साहाय्य के साथ उनको विवेक का प्रतीक कहकर विवेकानन्द के नए नाम से विभूषित किया। जगत का विवेक जगाने के लिए स्वामीजी अमेरिका पहुँचे।

हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए स्वामीजी को कोई आमन्त्रण नहीं मिला था। किन्तु संयोगवश हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइट से परिचय हो गया था। वे स्वामी जी के लोकोत्तर व्यक्तित्व और पाण्डित्य से मुग्ध थे। उन्होंने कहा—स्वामीजी, सूर्य को अपना प्रकाश फैलाने के लिए किसी आमंत्रण या अनुमति की आवश्यकता पड़ती है क्या? उसकी किरणें तो विश्व के अन्धकार को दूर करती हैं और सबको जीवन प्रदान करती हैं।

अब चलिए शिकागो में आयोजित इस विशाल विश्व-धर्म महासम्मेलन में चलें।

सितम्बर मास की ग्यारहवीं तारीख। संसद का उद्बोधन करने के लिए प्रथम बैठक बुलाई

गई है। विशाल सभाकक्ष में अमेरिका यूरोप तथा अन्य देशों के सहस्रों सम्भ्रान्त नागरिक, अध्यापक तथा विद्वान विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों के विचार सुनने के लिए बैठे हुए हैं। मंच पर वक्तागण अपने धर्मों का मतवाद और विशिष्टताप्रस्तुत करने के लिए उद्यत हैं। विश्व के समक्ष सनातन हिन्दू धर्म का सद्भावनापूर्ण कल्याणकारी संदेश रखने का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अवसर है। वक्ताओं के बीच तीस वर्षीय युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द उपस्थित हैं। उनका उज्वल मुखमण्डल, आत्मविश्वास से परिपूर्ण भाव-भंगिमा तथा सबसे भिन्न वेश भूषा सभा में उपस्थित सब लोगों का मन अचुम्बक की भाँति आकर्षित किये हुए हैं। एक के बाद एक वक्तागण अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। सभापति स्वामीजी का आह्वान करते हैं। किन्तु अभी उनका बोलने का मन नहीं है वे थोड़ा और समय चाहते हैं। थोड़ी देर बाद उन्हें पुनः बुलाया जाता है।

स्वामीजी सभा को संबोधित करने के लिए खड़े होते हैं। उनके संबोधन के शब्द हैं— "अमेरिका वासी भगिनी एवं भ्रातृवृन्द" इतना सुनते ही सभा स्थल करतल ध्वनि से कुछ देर तक गूंजता रहता है और लोग खड़े होकर स्वामीजी का अभिनन्दन करते हैं। इसका कारण क्या हो सकता है ? अद्वैत वेदान्त कहता है कि चराचर सब प्राणियों में अपनी आत्मा का दर्शन करो। इस अनुभूति पर आश्रित स्वामीजी के हृदय से निकली वाणी ने सबके मर्म को स्पर्श किया था। उन लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई अपना घनिष्ठ मित्र उन्हें संबोधित कर रहा है। स्वामीजी ने सबका हृदय जीत लिया। विश्व में सद्भावना और भ्रातृत्व बोध की सूचना हुई। सद्भावना की जननी है प्रेम। जहाँ प्रेम है वहीं सद्भाव है।

स्वामी विवेकानन्द का यह प्रारम्भिक भाषण कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें भारतीय चिन्तन का मंगलमय स्वरूप विम्बित हुआ है। उन्होंने उद्घोषित किया "मैं आज पृथ्वी के सबसे प्राचीन संन्यासी—संघ की ओर से आप लोगों को बधाई देता हूँ। सब धर्मों की जननी सनातन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में सब श्रेणी और सब मतों के करोड़ों हिन्दुओं की ओर से अपना आन्तरिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ। मुझे ऐसे धर्म का धर्मावलम्बी होने का गौरव है जिसने संसार को सहिष्णुता तथा धर्मों को मान्यता प्रदान करने की शिक्षा दी है। हमलोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते हैं, वरन् सब धर्मों को सच्चा मानकर ग्रहण करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का गौरव है गर्व है जिसने पृथ्वी के समस्त पीड़ित और वहिष्कृत मतावलम्बियों को आश्रय दिया है।" स्वामीजी को योद्धा संन्यासी (Warrior Monk) भी कहते हैं क्यों कि उन्होंने अपने भाषणों में साम्प्रदायिकता, संकीर्णता, धार्मिक उन्मत्तता, कट्टरवादिता और कूपमण्डूकता पर भीषण प्रहार किया। उन्होंने विश्वबन्धुत्व और जीव को शिव समझकर उसकी सेवा करने पर विशेष बल दिया। पथ तो अनेक हैं किन्तु गन्तव्य एक है। यह परमहंस श्रीरामकृष्ण ने अपनी साधना के विभिन्न आयामों से सिद्ध कर दिया था। सद्भावना और प्रेम पूर्वक एक साथ मिल कर रहना, आज के युग की माँग है। स्वामी विवेकानंद की यह विवेकमय वाणी भारत के शाश्वत साधनामय जीवन से उच्चरित हुई। इसे सम्पूर्ण मानव जाति में प्रचारित करना चाहिए।

"सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः"

— जय गोविन्द राय
बी० ८/१२, शीश महल कालोनी,
कमच्छा, वाराणसी।

अनेक रोगों का इलाज : ध्यान योग

डा० शतीश "आत्रेय"

ध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति तनाव जैसी मानसिक बीमारियों से जल्दी ही छुटकारा पा लेते हैं। यह कार्य उनके शारीरिक तांत्रिक तंत्र की क्रियाशीलता बढ़ जाने के परिणामस्वरूप होता है।

वैज्ञानिक विलियम सीमैन ने बताया है कि प्रथम दो महीने तक ध्यान करने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व में विकास होते देखा गया है। ध्यान का अभ्यास नियमित क्रम से करते रहने पर अन्तः-वृत्तियों, अन्तःशक्तियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है और चिन्तामुक्त हुआ जा सकता है।

थियोफेर नामक वैज्ञानिक ने अपने अध्ययन से पाया है कि ध्यान करने वाले व्यक्तियों की साइकोलाजी में असाधारण रूप से परिवर्त्तन होता है। ऐसे व्यक्तियों में घबराहट, उत्तेजना, मानसिक तनाव, साइकोसोमेटिक बीमारियाँ, स्वार्थपरता आदि विकारों में कमी पायी गयी है तथा आत्मविश्वास और सन्तोष में वृद्धि, सहन-शक्ति साहसिकता, सामाजिकता, मैत्री भावना, जीवटता, भावनात्मक स्थिरता, कार्य-दक्षता, विनोद-प्रियता, एकाग्रता जैसे सद्गुणों की वृद्धि ध्यान के प्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं।

आन्द्रे एस० जोआ ने हालैंड में हाई स्कूल के छात्रों को एक वर्ष तक ध्यान का अभ्यास कराया। नियमित ध्यान करने वाले छात्रों की सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा बुद्धि क्षमता में बहुत अधिक वृद्धि पायी गयी। कठिन मामलों के हल प्रश्नों के उत्तर देने में ध्यान करने वाले छात्र अग्रणी रहे। इनकी स्मृति क्षमता में भी वृद्धि हुई। शैक्षणिक-प्रदर्शन में ये छात्र सर्वश्रेष्ठ रहे।

वेलिंगटन विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक टाम जे० रौट ने अपने अध्ययन में पाया है कि ध्यान का अभ्यास करने वाले साधक की शारीरिक क्षमता सामान्य और सुचारु रूप से सम्पादित होने लगती है। ध्यान के बाद भी अभ्यासकर्त्ता की श्वसन गति धीमी एवं आराम-दायक रूप में चलती रहती है। धीरे-धीरे श्वसन गति की दर कम हो जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए सुखद मानी जाती है।

वैज्ञानिकों का मत है कि ध्यान का प्रयोग उच्च रक्तचाप को कम करता है। हार्बर्ट बेन्सन और राबर्ट कीथ वैलेस ने उच्च रक्तचाप युक्त २२ बीमार व्यक्तियों का ध्यान के पूर्व और ध्यान के बाद १११९ बार उनका सिस्टोलिक और आर्टीरियल ब्लड प्रेशर रिकार्ड किया। ध्यान करने के बाद उक्त रोगियों के रक्तचाप में महत्वपूर्ण कमी आंकी गयी।

इन्हीं वैज्ञानिक द्वय ने शराब और सिगरेट पीने वाले, नशा होने के आदी १८६२ व्यक्तियों को २० महीने तक ध्यान का अभ्यास कराया। धीरे-धीरे नशे की आदत छूटती गयी और जो लोग पहले तनाव, श्वास-खांसी के मरीज बने थे, उनके स्वास्थ्य सुधरने लगे।

मिनेसोटा के प्रसिद्ध चिकित्सक डेविड डब्ल्यू ओर्मे जान्सन ने ध्यान का प्रयोग व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य सुधारने में किया। कुछ महीनों तक ध्यान का अभ्यास कराने पर उन्हें लोगों के व्यक्तित्व में आशाजनक परिणाम देखने को मिले। हाइपोकोन्ड्रिया, साइजोफ्रेनिया, टायलर मेनीफेस्ट एंक्जाइटी जैसे बीमारियों को ध्यान द्वारा नियंत्रित करने में भी जान्सन को सफलता मिली। अधिक दिनों तक ध्यान के नियमित अभ्यास का क्रम बनाये रखने से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में असाधारण रूप में वृद्धि होती है।

वैज्ञानिक फ्रैंक पैपेप्टिन ने अपने अनुसंधान "ध्यान और शुद्धिकरण" में बताया है कि ध्यान का नियमित अभ्यास करने से मनुष्य के शरीर की जीवन-शक्ति बढ़ती है—इम्यून सिस्टम विकसित होता है। फलतः आये दिन धर दबोचने वाली अनेक छूत की बीमारियों—संक्रामक बीमारियों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है। फ्रैंक का कहना है कि संक्रामक बीमारियों से ग्रस्त ४०८ व्यक्तियों को ध्यान का अभ्यास कराने पर ७० प्रतिशत व्यक्ति प्रति वर्ष की दर से अच्छे होते देखे गये। एलर्जी से ग्रस्त १२६ व्यक्यों में से ५६ प्रतिशत व्यक्तियों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ अथवा वे एलर्जी से मुक्त हुए। इससे स्पष्ट होता है कि ध्यान करने से व्यक्ति की जीवनी-शक्ति में वृद्धि होती है। अमरीका के वैज्ञानिक द्वय राबर्ट शा और डेविड कोल्ब ने ध्यान के अभ्यासियों पर किये गये अनेक प्रयोगों में पाया है कि ध्यान करने वाले लोगों में शरीर और मस्तिष्क के बीच अच्छा समन्वयन, सतर्कता में वृद्धि, मति मन्दता में कमी और प्रत्यक्ष ज्ञान, निष्पादन क्षमता एवं रिएक्शन टाइम में वृद्धि असामान्य रूप से होती है। मिरर स्टार—ट्रेसिंग टेस्ट में भी ऐसे व्यक्ति अग्रणी निकले हैं। उनके शारीरिक न्यूरोमस्कुलर समाकलन की दक्षता बहुत बढ़ी-चढ़ी हुई पायी गयी।

इरा एम० क्लेमोन्स नामक वैज्ञानिक ने ध्यान के प्रयोगों द्वारा ४६ व्यक्तियों के दांत की बीमारियों—मसूढ़ों के रोगों पर जीवनी शक्ति बढ़ा कर नियंत्रण कर दिखाया। क्लेमोन्स के अनुसार ध्यान करने से रोगी की प्रतिरोधी पर चिकित्सा द्वारा आसनी से नियंत्रण पाया जा सकता है।

ध्यान योग अब चिकित्सा विज्ञान में एक विद्या के रूप में प्रतिष्ठा पा चुका है और वह दिन दूर नहीं जब असाध्य रोगों का उपचार एवं संभावित रोगो की रोकथाम हेतु चिकित्सक किसी औषधि का प्रयोग न कर पहले रोगियों को ध्यान की कसौटी पर परखेंगे।

●

मैं अज, अविनाशी, आनन्दमय, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य, ज्योतिर्मय आत्मा हूँ—दिन-रात यही चिन्तन करते रहो, जब तक कि यह भाव तुम्हारे जीवन का अविच्छेद्य अंग न बन जाय।

जाग उठा कन्याकुमारी का पथ्थर !

—स्वामी आत्मदेवानन्द
बेलुड़ मठ

जाग उठा कन्याकुमारी का पथ्थर !
जब पहुँचा एक परिव्राजक योगीश्वर !
नहीं था वह कोई साधारण यायावर !
वह तो था नर नारायण नरेन्द्रनाथ नरवर ! (जाग उठा……)
पैदल चल कर पहुँचा था वह
भूख-प्यास थकावट की सीमा पारकर
अरे ! तूफानी समुंदर को फाड़कर ! (जाग उठा……)
छूनेसे उनके जाग उठी भारत माता
बोल उठी जय स्वामीजी ! हर हर महादेव हर !
देखो मेरा अतीत उज्ज्वल !
वर्तमान भयंकर !! भावी उज्ज्वलतर !!! (जाग उठा……)
तीन दिन तीन रात्रि समाधि सांगकर !
परिव्राजक ने ठान ली योजना गुरुतर
उठा ! बोला मंत्र यह परमहंस यतिवर—
"स्वार्थ त्याग शिव भाव से जीवसेवा कियाकर ! (जाग उठा……)
अब जागृत माता पूछ रही है !
सुनो ! मेरे लाल सब !
भूल गये क्या स्वामीजी का मंत्र ? !
ना ! माता ! ना ! नहीं भूलेंगे कभी भी वह मंत्र !
नया भारत ! एक भारत ! अरे नया ब्रह्मांड रचेंगे सब मिलकर !!"
एक मानव धर्म अपनाकर (जाग उठा……)
अब तो गरज उठा समंदर, बोला ललकार कर !
देखो ! देखो ! वह नहीं रहा केवल जागृत पथ्थर !
छाती तान खड़ा है आज उन्नत शिरधर !
बन गया है "स्वामी विवेकानन्द स्मृतिधर" !! (जाग उठा……)

देव लोक

—ब्रह्मलीन स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

मठ की सर्वांगीण उन्नति की ओर राजा महाराज की दृष्टि :

महाराज केवल ध्यान भजन के लिए ही उत्साह देते थे ऐसी बात नहीं, मठ की सर्वांगीण उन्नति की ओर उनकी प्रथम दृष्टि थी। उस बार उनके आने के साथ ही साथ मठ के घर दरवाजे आदि सब साफ किये गये, ध्यान-भजन, पाठ – आलोचना, सभी विषयों में सभी तत्पर हो गये। कुछ दिन में ही मठ से कांटे आदि निकाले गये और रास्ताघाट, बाग-बगीचा सब अच्छा हो गया। वे प्रायः प्रतिदिन प्रातः काल क्रम से मठ के चारों ओर घूमते थे एवं कामकाज के बारे में निर्देश देते थे। महाराज के आते ही सभी खूब व्यस्त हो जाते थे। बीच-बीच में साधुओं के लिए अच्छे भोजन की व्यवस्था करते थे। प्रातः काल नौ बजे घन्टा बजता था। साधु लोग जो जहाँ रहते थे घन्टे की आवाज सुनकर गङ्गा में हाथ मुँह धोकर बरामदे में एकत्र होते एवं डगलस या सर विलियम्भट् आदि नाना प्रकार की सुस्वादु खिचड़ी उनको खिलायी जाती थी। किसी किसी दिन सायंकाल भी इसी प्रकार घन्टा बजा कर सभी को खिलाया जाता था। महाराज खड़े होकर देखते तथा आनन्द करते थे। साधु लोग इस खाने को खाकर हाथ मुँह धोकर आनन्द से आवाज करते-करते अपने-अपने काम में लग जाते थे।

महाराज की सेवा में :

महाराज के लिए सूर्य महाराज अलग खाना बनाते थे। किस दिन क्या ख[illegible] बनेगा महाराज स्वयं ही बता देते थे। [illegible] महाराज गरम खाना उनको पहुँचा देते [illegible] किसी-किसी दिन पतला बेसन देकर शिवली [illegible] की पकौड़ी खाते थे। महाराज के भोजन में बै[illegible] पर सूर्य महाराज नीचे भोजनशाला से एक-[illegible] करके गरम-गरम शिवलोपत्ता का भुजिया प्ले[illegible] में देते। मैं दौड़कर महाराज को भोजन स्थ[illegible] पर जाकर देकर लौट आता—इसी प्रकार चा[illegible] पाँच शिवलीपता का पकौड़ा दे आता।

महाराज के खाने के बर्तन इत्यादि धोने [illegible] काम में सूर्य महाराज मुझे लगाते थे ए[illegible] साथ-साथ मुझे प्रसाद भी मिलता था। इ[illegible] प्रकार दूर से महाराज की कुछ-कुछ सेवा कर[illegible] की पुण्य स्मृति अभी भी मन में खूब आनन्द देती हैं। मालूम है कि मैं कितना भाग्यवान!— ठाकु[illegible] के मानसपुत्र की सामान्य सेवा करने का सौभाग्य मुझे मिला था। महाराज के पास बैठकर उन[illegible] उपदेश सुनने का सौभाग्य मुझे कभी नहीं हुआ, कारण मैं तब नया ब्रह्मचारी था। सेवक महाराजों की अनुमति सिवाय उनका दर्शन भी दुर्लभ था। वे सब मठ के विभिन्न स्थानों में कामकाज देखते हुए घूमते थे तब इस देवदूत को दूर से देखकर अनेक बार दर्शन करके जीवन

सार्थक किया है । उस समय मठ में नित्य आनन्दोत्सव चलता था । इस यात्रा में महाराज प्रायः पन्द्रह दिन मठ में थे । प्रायः रोज ही कुछ न कुछ नये भोजन की व्यवस्था होती, और प्रतिदिन ही प्रातःकाल महाराज के घर में बहुत से लोग ध्यान करने के लिए जाते थे । किसी-किसी दिन वे प्रश्नोत्तर के रूप में अनेक धर्मप्रसङ्ग करते थे, इस सब में योगदान देने का सुयोग मुझे नहीं हुआ, कारण प्रातःकाल से ही मुझे नाना प्रकार के कार्यों में लगना पड़ता था । रोज महाराज को प्रणाम किया है, यह ठीक याद है । वे मौन आशीर्वाद करते ।

निष्ठा के साथ ठाकुर सेवा का काम करने का महापुरुषजी का निर्देश :

महाराज के कलकत्ते से चले जाने पर मठ कुछ दिन तक खाली लगता था । कुछ दिन बाद ही महापुरुष महाराज ने मुझको ठाकुर भंडार के काम में लगा दिया । भाव महाराज प्रधान भंडारी । मैं उनका सहकारी । रोज प्रात.काल ठाकुर को प्रणाम करके भंडार के काम में लगने के लिए महापुरुषजी ने कह दिया था । और यह भी कहा था: 'मुख बन्द करके भण्डार का काम करना, पूजा की तैयारी करना और अन्यान्य कार्य करने के समय मन ही मन ठाकुर का नाम जप करना,'—इत्यादि । वे किसी किसी दिन भंडार में आकर कामकाज देखते और सिखाते । इसी प्रकार मन में आनन्द से भण्डार का कामकाज कर रहा था इसी समय मुझको कुआलालम्पुर आश्रम के कार्यकर्त्ता के रूप में भेजने की बात चल रही थी । उसके प्रमुख प्रेरक स्वामी शुद्धानन्द महाराज थे, और तैयारी भी काफी हो गयी थी । किन्तु महापुरुषजी के पास यह प्रस्ताव रखते ही उन्होंने कहा, नहीं नहीं, वह अभी बच्चा है, इतनी दूर कहाँ जाएगा ? इसके अतिरिक्त मठ का कामकाज भी तो है । इसका शरीर भी उतना अच्छा नहीं है ।' मेरा जाना भी बन्द हो गया । मैं मठ में ही रह गया एवं ठाकुर भण्डार का कामकाज करने लग गया । एक दिन भोग का घंटा पड़ने पर महापुरुषजी भण्डार में आकर बोले; 'देखो ठाकुर का हुक्का किस प्रकार सजाना चाहिए मैं दिखा देता हूँ' - कहकर मेरे हाथ से जलभरा हुक्का लेकर किस प्रकार जल भरना चाहिए, किस प्रकार तमाखू सजाना चाहिए, कितना तमाखू देना चाहिए दिखाया एवं चार जलता हुआ अंगार रखकर हाथ पंखा से धीरे-धीरे हवा करने के लिए कहा । और कहा कि, जब देखना कि हुक्के के नीचे से धुआँ निकल रहा है तब जानना कि तमाखू ठीक पकड़ लिया है । उसके बाद नल किस प्रकार करना चाहिए यह भी दिखाया । एक आम का पत्ता लाने के लिए कहा, उन्होंने आम पत्ते का सिर काट कर फेंक दिया और आधा पत्ता मोड़ कर छोटा नल तैयार किया और हुक्के में लगाकर ऊपर ले जाने के लिए बोले । किसी-किसी दिन आकर कोई विशेष फल और केला, संतरा किस प्रकार छीलना चाहिए, काटना चाहिए यह दिखा देते थे, और कहते; भंडार का कार्य ठाकुर-पूजा की तरह निष्ठापूर्वक करना चाहिए ।'

लेखक को पीलिया रोग :

कुछ दिन बाद ही मैं पीलिया रोग से ग्रस्त हो गया । बीमारी जब बढ़ गयी तब महापुरुष महाराज ने मुझको बेलूड़ग्राम के डाक्टर हरिबाबू के पास भाव महाराज के साथ भेजा । मुझको देखते ही उन्होंने पास बुलाकर पूछा; 'देखूँ तो साधु, तुमको क्या हुआ है ?' पहले नाड़ी देखी एवं आँख देख कर कहा, 'समझ गया, पीलिया हुआ है । सब कुछ पीला दिखायी दे रहा है । टट्टी कैसी होती है, मैदे की तरह सफेद होता है क्या ? मेरे सब प्रश्नों का जबाव देने पर उन्होंने मुझे

दवा देकर कहा; 'मठ में जाकर सो जाओ। नींबू का रस डाल पानी और बार्ली खाना। भात दाल और तरकारी मत खाना, तीन दिन के बाद फिर आओ।' मैं डाक्टर साहब के सामने ही दवा खाकर मठ वापस आ गया एवं धीरे-धीरे काम में लग गया एवं नीबू का रस मिलाकर दिन में तीन-चार बार बार्ली और पानी पीने लगा। मट्ठे की व्यवस्था उस समय सम्भव नहीं थी, खूब कमजोर हो गया था। एक दिन प्रात: काल शयनघर में खाट के नीचे लेट कर शयनघर साफ कर रहा था किन्तु खाट के नीचे से निकल नहीं सका। पन्द्रह दिन तक इसी प्रकार कष्ट भोग किया। महापुरुष को प्रणाम करने जाता। वे मेरे शरीर की अवस्था देखकर खूब दुःख प्रकट करते। युवावस्था में इस पीलिया रोग ने— सारे जीवन भर के लिए मेरे स्वास्थ्य को खराब कर दिया था।

काशी में स्वामी के उत्सव में महाराज द्वारा संन्यास और ब्रह्मचर्य दान :

क्रमश: स्वामीजी के उत्सव की तैयारी प्रारम्भ हो गयी। महापुरुषजी के कमरे में प्रातःकाल वे सबके साथ इसी विषय पर वार्तालाप करते थे। उस वर्ष राजा महाराज मठ में नहीं आयेंगे, इसलिए मठ में स्वामीजी की तिथि पूजा के दिन संन्यास ब्रह्मचर्य आदि नहीं दिये जाएँगे। कुछ दिन पहले विशेष आवश्यक कार्यवश महाराज शरत महाराज को साथ लेकर काशी गये और इस यात्रा में प्राय: दो महीने काशी में ही थे। मठ में खबर आयी कि महाराज स्वामी के उत्सव में बेलुड़ मठ नहीं आ सकेंगे, इस बार काशी में संन्यास ब्रह्मचर्य देंगे। उस समाचार के फैल जाने से विभिन्न आश्रमों से संन्यासी और ब्रह्मचारी प्रार्थी होकर काशी में एकत्र हुए। उस बार स्वामीजी की तिथि पूजा में महाराज ने बीस लोगों को संन्यास तथा पन्द्रह लोगों को ब्रह्मचर्य प्रदान किया था। महाराज के काफी समय तक रहने से दोनों आश्रमों के सभी साधु-भक्तों का बहुत कल्याण हुआ। महाराज अपने स्वयं के जीवन एवं धर्म प्रसंगों के द्वारा सभी को साधन-भजन के लिए उत्साहित किया करते थे। राजा महाराज का यह काशीवास रामकृष्ण संघ के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। (क्रमश:)

मनुष्यों के प्रकार

परमहंस देव अपने शिष्यों के साथ टहल रहे थे। देखा कि एक जगह मछुए जाल फेंककर मछलियाँ पकड़ रहे हैं। एक मछुए के पास वे खड़े हो गए और शिष्यों से बोले, 'ध्यानपूर्वक इस जाल में फंसी मछलियों की गतिविधियों को देखो।'

शिष्यों ने देखा कि कुछ मछलियाँ ऐसी हैं, जो जाल में निश्चल पड़ी हैं। वे निकलने की कोई कोशिश नहीं कर रही हैं, जबकि कुछ मछलियाँ जाल से निकलने की कोशिश करती रहीं, किन्तु उन्हें सफलता न मिली। और कुछ जाल से मुक्त होकर पुन: जल में क्रीड़ा कर रही है।

परमहंस देव ने शिष्यों से कहा, 'जिस प्रकार मछलियाँ तीन प्रकार की होती हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी तीन प्रकार के होते हैं। एक श्रेणी उन मनुष्यों की होती है जिनकी आत्मा ने बन्धन स्वीकार कर लिया है और वे इस-भव जाल से निकलने की बात ही नहीं सोचते। दूसरी श्रेणी ऐसे व्यक्तियों की है जो वीरों की तरह प्रयत्न तो करते हैं, पर मुक्ति से वंचित रहते हैं और तीसरी श्रेणी उन लोगों की है, जो चरम प्रयत्न द्वारा अन्तत: मुक्ति प्राप्त कर ही लेते हैं।'

इतने में एक शिष्य बोला, 'गुरुदेव ! एक श्रेणी और होती है, जिसके सम्बन्ध में आपने नहीं बताया।'

'हाँ एक चौथी भी श्रेणी होती है,' परमहंस देव बोले, 'इस श्रेणी के मनुष्य उन मछलियों के समान हैं, जो जाल के निकट ही नहीं आतीं। इसलिए उनके फंसने का प्रश्न ही नहीं उठता।'

सिस्टर निवेदिता

—सुश्री जसबीर कौर आहूजा
पटियाला, पंजाब

14. राष्ट्रीय शिक्षा

"भारत में शिक्षा की समस्या सबसे बड़ी है परन्तु दुर्भाग्यवश भारत के लोगों के मन में इस जटिल समस्या के प्रति तीव्र भावनाओं का अभाव है।" निवेदिता ने एक बार गिला करते हुए कहा।

निवेदिता ने शिक्षा प्रणाली के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर कहा और लिखा, प्रारम्भिक प्राइमरी, सैकेण्डरी, यूनीवर्सिटी शिक्षा, स्त्रियों की शिक्षा, ललित कलाओं की शिक्षा तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा। इन विषयों के संबंध में उन्होंने जो कुछ उस समय कहा, शिक्षा के क्षेत्र में आज भी उसका उतना ही महत्त्व है।

उन्होंने राष्ट्रीय परम्परा के अनुसार एक छोटा सा स्कूल चलाया। उन्हें किसी बड़ी यूनीवर्सिटी या वैज्ञानिक शोध संस्थान के स्थापित करने का मान प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु उनकी शक्ति का स्रोत था सही और शुद्ध विचार, जिसमें उन्होंने अनेको शिक्षा शास्त्रियों, कलाकारों और वैज्ञानिकों को प्रेरित किया, यही कारण है कि महान् इतिहासकार जूनानाथ सरकार ने लिखा, "निवेदिता लड़कियों का स्कूल हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ और अनुकरण का एक उदाहरण बन गया।"

उन्होंने संकल्प किया था कि वे अपने स्कूल को राष्ट्रीय परिपाटी के अनुसार चलाएंगी और उन्होंने अपने आदर्श का पालन पूरी तरह किया। उनके विचार में केवल पढ़ना और लिखना कोई शिक्षा नहीं थी। वह शिक्षा प्रणाली जिसमें राष्ट्र की सभ्यता और इतिहास की जानकारी नहीं दी जाती वह सच्ची शिक्षा नहीं है। उन्होंने यह भी फैसला किया कि वे विदेशी सरकार से कोई सहायता नहीं लेगी क्योंकि विदेशी शिक्षा ने स्त्रियों को यही सिखाया था कि वे अपने आदर्श छोड़ दें और विदेशी सभ्यता से प्रभावित हो जायें। निवेदिता इसलिए इन सबके विरुद्ध थी। उनकी लड़कियां पूर्वी रिवाज के अनुसार नयी पीढ़िया और गद्दी बिछाकर बैठती थी उनके सामने कम ऊंचाई वाले पटरे होते थे। वे उनको भारतीय नमूने के चित्र और दृश्य बनाने के लिए प्रेरणा देतीं और हमेशा यह याद करवाती कि वे भारत वर्ष की पुत्रियां हैं। वे लड़कियों से कहती, "तुम भारत की सपुत्रियां हो। तुम हर रोज जपो— "भारत, भारत, भारत, माता, 'माता, माता।"

इस तरह कहकर वे तुरन्त स्वयं भी जपने लगती थी।

एक बार जब वन्दे मातरम् को सरकार के द्वारा सार्वजनिक रूप से गाये जाने की मनाही थी उन्होंने यह गीत अपने स्कूल की दैनिक प्रार्थना में शामिल कर लिया। पहले स्वदेशी आन्दोलन के समय उन्होंने देश की बनी छोटी-मोटी वस्तुओं का प्रयोग अपने लिए शुरू कर लिया और इस आन्दोलन को उन्होंने "तप" कहकर पुकारा। चरखा कातने की शिक्षा के लिए उन्होंने एक वृद्ध, महिला को नियुक्त कर लिया जिसे लड़कियां, 'चरखा मां' कहकर बुलाती थी। वह लड़कियों को "श्रीमां" के पास और "बेलूड़ मठ" भी देखने के लिए ले जाती

थीं। लड़कियां स्वामी विवेकानन्द के बारे में भी सब कुछ निवेदिता से सुनती थीं यहां तक कि निवेदिता ने बड़े मान के साथ अपने एक मित्र को लिखा "ये सब लड़कियां विशेष विचार और प्रेरणाएं ग्रहण कर रही हैं। इस प्रकार ये छात्राएं और शिष्याएं भी हैं।

एक बात जिस पर निवेदिता जोर देती थी वह ये कि यह कहना कि भारतीय नारियां अनपढ़ हैं कितना भ्रामक है भले ही आधुनिक ढंग के अनुसार कहना कि उन्हें पढ़ना लिखना नहीं आता परन्तु, क्या महाभारत, रामायण और पुराणों की गाथाएं हर भारतीय नारी अपने बच्चों को नहीं बताती? क्या पश्चिमी नावेल कहानियां ही पढ़ाई है। संसार का सबसे महान साहित्य भारत का ही है जो कि उनके होठों पर है अतः प्रश्न उठता है कि निवेदिता ने भारतीय नारी की शिक्षा प्रणाली के लिए इतना कुछ किया क्यों? उत्तर उसके अपने शब्दों में इस तरह है, 'भारतीय नारी यूनीवर्टियों में दाखिल हो गयी थी और उसे शिक्षा मिलती थी कि वह अपनी सभ्यता छोड़कर पश्चिमी सभ्यता अपनायें। इसलिए उसे शिक्षित करना जरूरी था ताकि, वह पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर देश की शक्ति को एक मुट्ठ रख सके।

भारतीय कला और विज्ञान

उनकी बहुत बड़ी रुचि का एक विषय था प्राचीन भारतीय कला की ताजगी और पुनर्जन्म। एक पत्र में उन्होंने लिखा, "राष्ट्रीय कला का पुनर्जीवन मेरा प्यारा सपना है, जब भारत को अपनी प्राचीन कला दोबारा मिल जायेगी वह एक बलवान राष्ट्र बन जायेगा।"

उन्हें यह देखकर बहुत दुःख होता था कि भारतीय चित्रकार पश्चिमी चित्रकला की नकल करते हैं हालांकि वे स्वयं भी इतने गुणवान हैं। वह भारतीय कलाकारों से कहती थी कि वे भारतीय जीवन को तस्वीर खींचने वाले चित्र बनायें। भारत में चित्रकारों के इधर-उधर विषय ढूंढने के यत्न करने की आवश्यकता ही नहीं थी, वह उन्हें श्री रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, भगवान बुद्ध और भगवान शिव तथा भीष्म और युधिष्ठिर, शिवाजी और महाराणा प्रताप के चित्र बनाने को कहती। ऐसे चित्र भारतवर्ष की आत्मा को न केवल उभारेंगे बल्कि वे भारत की आत्मा को संसार के मानचित्र पर प्रकट करेंगे। सचमुच ही उन्होंने भारत की कला के लिए बहुत कुछ किया। उन्होंने अवनिन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महाकलाकारों, नन्दलाल बोस और अमित कुमार हालदार जैसे उनके कई चेलों को अजंता एलोरा की चित्रकला का अध्ययन करने और भारतीय कलाओं की भिन्न-भिन्न शाखाओं का मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित किया।

उनका दूसरा स्वप्न था विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित करना। वह महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बोस की मित्र और शुभचिंतक थी। उनकी वैज्ञानिक खोज का काम यूरोप और अमरीका से कई पहलुओं में बहुत आगे था। उस समय भारत पराधीन था और जगदीशचन्द्र बोस को अपनी खोज छपवाने के लिए ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेनी पड़ी। निवेदिता ने उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक 'प्लांट रिस्पोंस' (Plant response) और अन्य पुस्तकें छपवाने में उनकी सहायता की।

भारतीय स्त्रियां

जब निवेदिता पहली बार बाग बाजार में रहने गयी थीं तब से ही भारतीय नारी से प्रभावित हो गयी थी। उन्हें वह लज्जाशील, संकोची परन्तु विनम्रता से भरपूर, स्वाभिमानी और अच्छे

मर्तवेवाली लगती थीं। वह चाहती थी कि उन्हें अच्छी शिक्षा मिले परंतु उन्हें यह भी कहती थी कि वे अपने आदर्शों और रीति-रिवाजों का त्याग न करें। "पश्चिम के आधुनिक फैशन उसकी और वर्ड व्यर्थ बातें और उसकी अंग्रेजी शिक्षा से अपनी विनम्रता और अपनी गृहस्थी के प्यारे बंधनों को नष्ट न होने दें," इस तरह वे उन्हें उपदेश देती थी।

वे भारत को महान् नारियों का देश कहती थीं। वे उन्हें सीता और सावित्री, उमा और गांधारी के उन उपदेशों के बारे में बताती थी जिन पर वे खड़ी थीं। वे भारतीय नारी की पवित्रता और उसके पातिव्रत धर्म की प्रशंसा करती थीं और माँ की सच्ची निस्वार्थता और उसकी स्नेह पूर्ण ममता का गुणगान करती थीं। वे बच्चों के द्वारा अपने बड़ों के प्रति सत्कार की भावना की प्रशंसा किये बगैर नहीं रहती थीं। वे स्त्रियों को अहिल्या और लक्ष्मीबाई के वीरतापूर्ण कार्यों की याद दिलातीं, जिन्होंने अपने अन्तिम श्वास तक अपनी मातृभूमि की सेवा की।

निवेदिता का विश्वास था कि भारतीय नारी के एक बार जाग जाने से देश फिर महान् बन जायेगा। बड़ी आशाओं के साथ उन्होंने लिखा था "उस आनंदमयी माँ की शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है कि पहले वह इन बेटियों और स्त्रियों को सशक्त घेरे में घेर लिया जाय जिन्हें आने वाले समय में भारतीय नारी बनना है। यहाँ उनका कर्तव्य है कि वह आत्मसमर्पण करे; अपने गौरव भरे मस्तक उसके चरणों में झुकाये और उसके लिए अपना आपा अपने पति और अपने बच्चों के जीवन भी अर्पण कर देने की प्रतिज्ञा करे सिर्फ तभी वे मातृ शक्ति का मुकुट पहनकर दुनिया के सामने खड़ी हो सकेगी। आज उनका पवित्र मंदिर अंधकार के परछावें में घिरा हुआ है परन्तु, भारतीय नारी जब राष्ट्रीयता की आरती उतारेगी तो वह मंदिर केवल प्रकाश से भर ही नहीं जायेगा बल्कि सुन्दर प्रभात की बेला भी निकट आयेगी।"

एक बार उन्होंने लिखा "मेरा विश्वास है कि आज के भारत की जड़ें भूतकाल में है और उसके सामने शानदार भविष्य चमक रहा है।"

फिर प्रार्थना भरे लहजे में कहा, "ओ राष्ट्रीयता तू मेरे पास आ तेरे साथ मेरे लिए दुःख आये या सुख, आदर आये या अनादर कुछ भी हो पर तू मुझे अपना ले यह निवेदिता की तीव्र इच्छा थी।'

त्याग और लोभ

किसी नगर में एक सेठ रहता था। बहुत सम्पन्न था। उसकी तिजोरियाँ धन से भरी थीं। पर जैसे-जैसे बढ़ता जाता था, उसका लोभ भी बढ़ता जाता था। सेठ बहुत ही कंजूस था। कभी किसी को एक कौड़ी भी नहीं दे सकता था। दरवाजे पर कोई आता था तो दुत्कार देता था। संयोग से एक दिन एक साधु आया। सेठ ने जाने क्या हुआ कि उसने एक पैसा उसकी झोली में डाल दिया। साधु चला गया। लेकिन सेठ के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि शाम को उसे एक अशर्फी प्राप्त हो गयी। सेठ को अशर्फी मिलने से जहाँ खुशी हुई, वहाँ मलाल भी हुआ कि उसने साधु को एक पैसा ही क्यों दिया।

अगले दिन साधु आ गया। सेठ तो प्रतीक्षा कर ही रहा था। उसने झट एक अशर्फी निकाली और उसकी झोली में डाल दी। शाम होने की राह देखने लगा। शाम हुई, रात हुई लेकिन उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। उसकी अशर्फी भी चली गयी। वह सिर धुनने लगा। तभी आकाशवाणी हुई, सेठ! याद रख, त्याग फलता है, लोभ नता है।'

शिवज्ञान से जीवसेवा

—स्वामी सारदात्मानन्द

पराधीनता के नीवन्ध अन्धकार में निमग्न जाति के हृदय को वज्रगर्भ अग्नि मन्त्र में किसने उज्जीवित किया था ? किसने इस जड़ता ग्रस्त, तन्द्राच्छन्न, पराभुकरण मत्त जाति को उन्दुदय किया था ? अन्ध तामसिकता में निमग्न भारत वर्ष को ज्योतिर्मय मृत्युंज्यी वाणी के द्वारा यौव धर्म में किसने दीक्षित किया था ? वे हैं महा संन्यासी वीरेश्वर विवेकानन्द।

सन् १८६३ ईस्वी; उत्तर कलकत्ता के शिमुलिया के विख्यात दत्त परिवार में भूमिष्ठ हुआ वीर संन्यासी विवेकानन्द, पिता विश्वनाथ दत्त, माता भुवनेश्वरी देवी, वीरेश्वर शिव का कृपालब्ध माता के दिले पिता का नरेन्द्रनाथ।

यौवन में दर्शन शास्त्र पाठ एवं तीक्ष्ण विज्ञान बुद्धि ने उन्हें घोर नास्तिक बना दिया था। किंयत्काल ब्रह्म समाज के सम्बन्ध में रह कर मन तृप्त नहीं हुआ। आकस्मिक साक्षात् हुआ युगावतार ठाकुर श्रीरामकृष्णदेव से। ठाकुर के दिव्य सान्निध्य में नरेन्द्रनाथ उनका शिष्यत्व ग्रहण एवं संन्यासधर्म में दीक्षित होकर स्वामी विवेकानन्द हुए।

ठाकुर श्रीरामकृष्देव के देहावसान के बाद स्वामी विवेकानन्द १८९० के भारत भ्रमण में अधःपतित जाति को उदात्तकंठ से अमोघ अभीःमन्त्र में आह्वान किया। १८९३ ई०, अमेरिका के शिकागो शहर में अनुष्ठित विश्वधर्म महा सम्मेलन में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में योगदान कर प्रमाणित किया कि, भारतवर्ष ही विश्वमानव को दे सकता मुक्ति का एकमात्र ठिकाना। आज पाश्चात्य-वासियों के सामने भारत आविष्कृत हुआ। चार वर्ष तक अमेरिका में धर्म प्रचार द्वारा अनेक ज्ञानी एवं गुणी को भारत के सनातन धर्म में दीक्षित कर १८९६ में स्वामीजी स्वदेश लौट आए। विदेशी शिष्य एवं शिष्याओं में मार्गरेट नोवल भारत की भगिनी निवेदिता नाम से ख्यात हैं।

१८८४ ई० भगवान श्रीरामकृष्णदेव भक्तजनों को उपदेश दे रहे थे—भगवत् नाम में रुचि, साधु-पूजन, नाम नामी अभेद, भक्त एवं भगवान अभेद ज्ञान से सदा साधु-भक्तों को श्रद्धा, पूजा, वन्दना। कृष्ण का जगत् संसार हृदय धारण कर, सर्व जीव में दया……। इतना कहकर ठाकुर समाधिस्थ, समाधि भंग होने के बाद; जीव में दया-जीव में दया ? दुःशाला, कीटानुकीट तू जीव को दया करेगा ? दया करने वाला तू कौन होता है ? न, न, जीव में दया नहीं, बोलो शिव ज्ञान से जीव सेवा।

इस अनमोल वचन को सुनकर नरेन्द्रनाथ ने घर से बाहर आकर कहा था—एक अद्भुत आलोक आज ठाकुर के वाक्य में देख पाया, ठाकुर ने आज भावावेश में जो सुनाया उससे प्रमाण हो रहा है—वन का वेदान्त घर में लाया जा सकता, संसार के सकल कर्म में उनका अवलम्बन किया जा सकता। भगवान यदि सुयोग दें तो

आज जो सुना, इस अद्भुत सत्य को संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा। पंडित, मूर्ख, धनी-दरिद्र, ब्राह्मण-चण्डाल सबको सुनाकर मोहित करूँगा।

वस्तुतः उसी दिन से स्वामीजी का कर्मयज्ञ शुरू हुआ था।

स्वामीजी कहते थे—सबसे पहले पेट की चिन्ता, अन्न की चिन्ता मनुष्य का प्रथम, उसके बाद मस्तिष्क, किसी ने ऐसा लक्ष्य किया ? मनुष्य जब चलता है पेट उसके आगे चलता है, सिर पीछे रहता है। मस्तिष्क का उन्नति के लिए कुछ युग लग जाएँगे, गरीबों के लिए नये-नये कर्म का उपाय करना पड़ेगा। जिससे अन्न एवं शिक्षा का विस्तार हो सके।

स्वामीजी ने जीव रूपी शिव पूजा की प्रेरणा पायी थी श्रीरामकृष्ण देव से उपलब्ध कुछ वाणी में। ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते थे—सर्वत्र ईश्वर विराजमान। आँख बन्द करने में ईश्वर है और आँख खोलने से नहीं है ? मिट्टी की प्रतिमा में उनकी पूजा हो सकती है और रक्त मांस के शरीरमें नहीं हो सकती ? शालग्राम शिला की अपेक्षा नर नारायण प्रत्यक्ष हैं। मूल वक्तव्य "शिव ज्ञान से जीव सेवा।"

सेवाधर्म का नया व्याख्यान किया स्वामीजी ने—केवल नर-नारायण की सेवा ही मनुष्य को जन्म-मृत्यु से मुक्त कर सकती है, कारण—दूसरों की सेवा से निज सेवा होती है। सर्वव्यापी ईश्वर दर्शन और उनकी सेवा, एकत्व दर्शन साधना की सर्वोच्च अवस्था है। साधक का यही एकमात्र साधन मार्ग, दीर्घ दिनों की तपस्या के बाद मैंने उपलब्धि की—जीव, जीव में उनका अधिष्ठान, इससे पृथक ईश्वर-फिश्वर कुछ नहीं है, "शिव ज्ञान से जीव सेवा।"

परिव्राजक विवेकानन्द जब आर्यवर्त एवं दक्षिणात्य भ्रमण कर रहे थे, उनके सामने भारत का कंकालसार मूर्ति का स्वरूप उद्भव हुआ था। स्वामीजी ने उस दिन तीव्र व्यथा का अनुभव किया था। क्षुधातुर, अर्द्धउलंग स्वदेशवासी की म्लान मुखच्छवि उनके स्वप्न में आयी थी। दिन, रात केवल उन्हीं लोगों की चिन्ता होने लगी। जिस दिन कन्याकुमारी के अन्तरीप में, पुण्यभूमि भारतवर्ष के शेष प्रान्त में समुद्र विधौत शिलाखण्ड के ऊपर ध्यानमग्न संन्यासी की दिव्य दृष्टि में जाग उठा था भारत-जीवन का चलचित्र, अतीत, वर्तमान, भविष्य के इंगित, उसी दिन ध्यानमग्न संन्यासी का मन चंचल हो उठा था। उसी क्षण स्वामीजी ने स्वयं को उत्सर्ग किया था—दुःखी भारतवासियों की सेवा में। जो सबके नीचे सबसे पीछे, स्वामीजी ने उन सर्वहाराओं को धूल-धूसरित वास स्थ प्रान्त में निज जीवन को अर्पण कर दिया था, लौट आया जनगण के समक्ष, द्वार-द्वार में जाकर युवाओं से कहा—उठो, जागो, सुदीर्घ रजनी अवसान प्राप्त, जागो भारतवर्ष, कितने दिनों तक मृत्यु की नींद में आच्छन्न रहोगे ? उठो, जागो, जगत्सभा तुम्हारी प्रतिक्षा कर रही है।

स्वामीजी थे वास्तववादी, जो कर्म स्वयं नहीं किया, उस कर्म को दूसरे को करने के लिए कभी नहीं कहा। भारतवासियों के उत्थान के लिए पाश्चात्य विज्ञान की आवश्यकता का अनुभव किया था स्वामी विवेकानन्द ने। सन् १८९२ में खण्डवा निवासकाल में स्वामीजी ने १८९३ में शिकागो विश्वधर्म महासम्मेलन के सम्बन्ध में सुना। ठाकुर के श्रीमुख से सुना हुआ वाक्य दया नहीं सेवा, "शिव ज्ञान से जीव सेवा" को साकार करने का शुभ अवसर स्वामीजी के सम्मुख सुस्पष्ट हुआ।

मद्रास में कुछ उच्चशिक्षित और आदर्शवादी युवक स्वामीजी के अनुयायी थे। आलासिगा पेरुमल के नेतृत्व में इन युवकों ने स्वामीजी को अमेरिका भेजने के लिए धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया। खेतड़ी नरेश अजित सिंह ने भी आवश्यक धन दिया। ३१ मई १८९२ को बम्बई से विदेश रवाना होने के पूर्व आदर्शवादी स्वामीजी ने श्री श्रीमाँ शारदा देवी से आशीर्वाद माँगते हुए एक पत्र लिखा था—माँ त्रेता में आकाश मार्ग से पाताल नगरी गया था, आज जलमार्ग से उस नगरी में पुनः ठाकुर का दूत बनकर नये युग के मार्गदर्शन के रूप में जा रहा हूँ।

३० जुलाई १८९३ को स्वामीजी शिकागो पहुँचे। उनके पास कोई परिचय पत्र नहीं था। जॉन हेनरी राइट नामक एक प्रोफेसर के साथ स्वामीजी का परिचय हुआ। अध्यात्म विषय चर्चा ने स्वामीजी के अन्दर जॉन राइट ने देखा—एकमात्र यह संन्यासी विश्ववासियों को दे सकता है परमपद प्राप्ति का सटीक मार्ग। और जॉन राइट ने स्वामीजी को परिचय-पत्र दिया। फलस्वरूप स्वामीजी को विश्वधर्म सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में स्वीकृति मिल गयी।

स्वदेश प्रत्यावर्तन के पश्चात् इस विपर्यस्त सर्वरिक्त जाति को संगठित करने का महान व्रत लेकर एक आदर्श संन्यासी संघ गठन में मनोनिवेश किया। १८९७ ई०, में उन्होंने रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठा की। १८९९ में गंगा नदी के पश्चिमी तट में प्रतिष्ठित हुआ नव युग का पुण्य तीर्थ बेलुड़ मठ।" १९०० ई० में पेरिस में हुए विश्व धर्म सम्मेलन में योगदान कर स्वदेश लौट आये और उसके बाद उनका स्वास्थ्य द्रुत अवनति की ओर गया। फलतः १९०२ ई० की ४ जुलाई मात्र ३९ वर्ष की आयु में समाधि मग्न अवस्था में महाजीवन का महाप्रयाण घटा।

स्वामीजी के अविर्भाव के कारण जन्म लाभ किया एक बलिष्ठ भारत ने। उन्होंने उपलब्धि की कि धूण्य जातिभेद ने ही भारतवर्ष को दुर्बल बना दिया। इसलिए उन्होंने उदात्तकंठ से पुकार कर कहा—मूर्ख भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, चण्डाल भारतवासी मेरा रक्त, मेरा भाई। साथ-साथ उन्होंने उद्बुद्ध किया—आर्त, पीड़ित विपन्न आवर्णहीन जाति को मानवता की सेवा में। मानवता की सेवा एवं कर्म का माध्यम ही मुक्ति का एकमात्र साधन, यह थी वीर संन्यासी की वीर वाणी, "शिव ज्ञान से जीव सेवा।"

स्वामी विवेकानन्द थे भारत-आत्म के ज्योतिर्मय प्रतीक। स्वदेश एवं समाज को उन्होंने परिणत किया था महामानवता के पुण्य पीठस्थान में। चिल्लाकर कहा—मुसलमान का बाहुबल एवं हिन्दुओं का मस्तिष्क के समन्वय से भारत बन सकता है विश्व की श्रेष्ठ शक्ति। इस महा संन्यासी ने भारत को कर्म के पथ में अग्रसर होने का जो निर्देश दिया था, आज भारत उससे विस्मृत होकर नाना दुर्बलता के पंक में निमज्जित हो गया है। इसे घोर अन्धकार के अन्दर से हम लोग कान से सुन सकें स्वामीजी की वह अग्निगर्भ वाणी—"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान् निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया; दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति'।" इसलिये आत्मशक्ति का उद्बोधन एवं जीवप्रेम तथा विश्वप्रेम ही मुक्ति का निश्चित सोपान। आज भारत के सर्वाग्र में प्रयोजन आत्मशक्ति एवं विश्वास का उद्बोधन, साथ में बलिष्ठ चेतना का निर्भीक विकास। कारण "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।"

●

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावान्दोलन विषयक नारे

—डॉ केदारनाथ लाभ

युवकों के आदर्श अमन्द
विवेकानन्द विवेकानन्द ।

जन-जन के जीवन आधार
रामकृष्ण प्रभु युग-अवतार ।

स्वामीजी की सुनो पुकार
भारत माता से कर प्यार ।

स्वामीजी का है आह्वान
बनो मनुष्य-मनुष्य महान ।

ऊँच-नीच का भेद न पालो
दीन-दलित को गले लगा लो ।

नर में नारायण की पूजा
इससे बढ़कर धर्म न दूजा ।

सेवा त्याग और बलिदान
भारत के हैं धर्म महान ।

नैतिक शिक्षा दिव्य चरित्र
हर नर नारी बने पवित्र ।

अनेकता में एकता
भारत की विशेषता ।

कहो गर्व से सीना तान
हम भारत माँ की संतान ।

पहले ईश्वर, फिर संसार
रामकृष्ण वचनामृत-सार ।

जितने मत हैं उतने पन्थ
मंदिर मस्जिद गिरिजा ग्रन्थ ।

सब को नीति धर्म की शिक्षा
सब में हो, तप त्याग तितिक्षा ।

भारत है देवों का देश
भाषा भिन्न-भिन्न है वेश ।

सब जीवों को शिव सा मान
सब का कर दैवी सम्मान ।

मन्दिर में जो है भगवान
बाहर वही बना इन्सान ।

भारतवासी जागो जागो
जड़ता भय और आलस त्यागो ।

जन-जन को देने आनन्द
आये स्वामी विवेकानन्द ।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जय !
जय माँ सारदा की जय !
स्वामीजी विवेकानन्दजी की जय !

नोट :—इन नाराओं को आश्रम के उत्सव/शोभा यात्राओं में प्रयोग हेतु प्रकाशित किया गया है ।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
विज्ञानानंद मार्ग, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद-२११००३
फोन : ६०७३११

२१ अगस्त, १९९४

अर्ध कुम्भ मेला शिविर, १९९५

एक अपील

प्रिय मित्र,

प्रयागराज का कुम्भ मेला विश्व के सबसे बड़े धार्मिक उत्सव के रूप में प्रसिद्ध है। इस समय यहाँ अर्ध कुम्भ मेला जनवरी १९९५ में सम्पन्न होने जा रहा है। इस महान अवसर पर देश के सभी भागों एवं विदेश से एक सौ पच्चीस लाख से भी अधिक तीर्थयात्रियों और साधुओं के भाग लेने की आशा है। कल्पवासियों के अतिरिक्त साधुओं और तीर्थयात्रियों की चिकित्सीय देखभाल के लिए विशेष व्यवस्था करनी होगी। पहले के वर्षो की ही तरह यह संस्था, एकत्रित तीर्थयात्रियों और साधुओं को निःशुल्क चिकित्सीय सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से मेला भूमि पर निःशुल्क एलोपैथिक और होमियोपैथिक क्लिनिक तथा एक प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्र का शिविर खोलने का विचार कर रही हैं। इस कार्य में हमारी सहायता के लिए योग्य डाक्टरों, कम्पाउण्डरों, चिकित्सा में सहकारी कर्मचारियों और स्वयं सेवकों की आवश्यकता होगी। तीन सौ तीर्थयात्रियों, एक सौ साधुओं तथा स्वयंसेवकों के लिए भोजन तथा आवास का प्रबन्ध भी करना होगा। शिविर में नियमित धार्मिक कार्यक्रमों के लिए एक मन्दिर तथा सत्संग पण्डाल की भी व्यवस्था होगी। शिविर का अनुमानित खर्च दस लाख रुपये हैं। इसलिये सेवाश्रम उदारमना जनता से इस उत्तम लोकोपकारी कार्य में सहायता के लिये जैसा कि उन्होंने पहले भी ऐच्छिक रूप से किया है, आन्तरिकता से अपील करता है। योगदान के रूप में प्राप्त आपका धन सधन्यवाद स्वीकार किया जायेगा।

चेक और ड्राफ्ट "A/C Payee only" से रेखित और **"रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद"** के नाम पर काटा जाना चाहिए और यदि रजिस्टर्ड डाक से भेजा जाय, तो अधिक श्रेयस्कर होगा।

धन्यवाद सहित,

प्रभु सेवा में आपका,
स्वामी निखिलात्मानन्द
सचिव

---

१. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम को दिया गया दान इन्कम टैक्स ऐक्ट १९६१ की धारा ८० G के अधीन आय कर से मुक्त है।

२. महत्वपूर्ण स्नान के दिन हैं—१४ जनवरी (मकर संक्रांति), १६ जनवरी (पौष पूर्णिमा), ३० जनवरी (मौनी अमावस्या), ४ फरवरी (वसंत पंचमी) और १५ फरवरी (माघ पूर्णिमा)।

३. जो लोग कुम्भ मेला के अवसर पर हमारे परिसर के भोजन एवं आवास की सुविधा चाहते हैं, उन्हें अग्रिम भुगतान के साथ एक निर्दिष्ट फार्म पर आवेदन द्वारा अपना स्थान आरक्षित करा लेना चाहिये। इस विषय में विस्तृत बिवरण के लिये उपरोक्त पते पर शीघ्र लिखने का कष्ट करें।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।